

एक सड़क सत्तावन गलियाँ

1/-

1/-

कमलेश्वर

अब मज़हब-परस्ती के छिलके उतर चुके हैं और इन्सान अपनी असली लड़ाई पहचान चुका है। हम उसे ताकत दें, दिमाग़ो तन्दुरुस्ती दें .....

नई पीढ़ी के तरुण कथाकारों में कमलेश्वर का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। उनकी कुछ कहानियाँ— 'राजा निरबंसिया', 'मेरी प्रेमिका' आदि हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। 'एक सड़क : सत्तावन गलियाँ' कमलेश्वर का उपन्यास है—सरस और कलापूर्ण।

प्रचारक पॉकेट बुक्स का प्रयास उत्कृष्ट मौलिक एवं अनूदित साहित्य को कम से कम मूल्य में प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि करना है।

प्रचारक पॉकेट बुक्स सं०—२

एक सड़क : सत्तावन गलियाँ

कमलेश्वर

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

2—EK SARAK : SATTAWAN GALIYAN : KAMLESHWAR

NOVEL

प्रथम संस्करण

१९६०

1/-

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी–१
मुद्रक : विद्यामन्दिर प्रेस [प्राइवेट] लि०, वाराणसी–१
चित्रकार : कांजिलाल

मयन देवता की बसाई हुई इस बस्ती की जिन्दगी की धुरी हैं—यह रिकटगंज की सराय, झमनलाल की मंडी और मोटरों के अड्डे। औरतों के अपने तीज-त्यौहार, मनौती-पूजा के ठिकाने हैं—शीतला देवी, गमा देवी, सैयद की मज़ार, बाबा का थान और नीम के नीचे पड़ी मयन देवता की मूरत। दो-चार मौके ऐसे ज़रूर आते हैं, जब मर्द-औरतों का सम्मिलित रूप दिखायी देता है—सदानंद आश्रम में साधु समागम हो या मंडी में रामलीला शुरू हो।

ज़िले की पाँच तहसीलों में सिर्फ़ दो को रेल जोड़ती है, बाकी तहसीलों के लिये आवागमन के ज़रिए दो ही हैं—मोटर और इक्के। बरसात में जब मौसमी नदियाँ और नाले इतराने लगते हैं तो रास्ते कट जाते हैं, कच्चे रास्ते दलदलों में परिणत हो जाते हैं, कंकड़ की सड़कों में भीषण दरारें पड़ जाती हैं, मोटर-अड्डे वीरान हो जाते हैं, इक्के वाले हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाते हैं और घोड़े; उनके सिर्फ दो ही काम रह जाते हैं—पूँछ से मक्खियाँ उड़ाना और हिनहिनाना।

नदियाँ घहरा उठती हैं, पर आदमी का आना-जाना नहीं रुकता। नदियों में कड़ाह पड़ जाते हैं और इन छोटी-छोटी बस्तियों के दिलेर लोग उन कड़ाहों में बैठकर बड़ी-बड़ी भँवरें, हाथी-डुबाऊ गहराइयों और चौड़े पाट पार कर जाते हैं। जानवरों तक को लँघा ले जाते हैं। खास तौर से अषाढ़ में मंडी की नाड़ी धीमी पड़ जाती है...पूरी बस्ती पर उदासी छा जाती है। सब कामों के सिलसिले टूट जाते हैं। नाज की लदाई बंद हो जाती है। पल्लेदार और तौला बेकार हो जाते हैं। सौदागरों का आना-जाना बंद। और फिर अढ़तियों की अपनी तिकड़म। बरसात के लिये जिन दिनों अन्न की बेहद खींचातानी पड़ती है, गोदाम भर लिये जाते हैं। थोक बिक्री में तब उनका मन

नहीं रमता . . . ब्याने के वक्त भला कोई अपनी गाय बेचता है ! यह तो पाप का भागी होना हुआ । कोई हिम्मतवाला सौदागर मंडी में आ ही गया तो टका-सा जवाब मिल जाता है—अपने शहर के लिए भी कुछ रखेंगे सेठ जी, बरसात बाद आना ।

मंडी की नाड़ी धीमी पड़ते ही पूरी बस्ती उदास हो जाती है। सच पूछा जाय तो शहर के मध्य में स्थित यह मंडी ही दिल है । इसी की धड़कनों के साथ जीवन की गति बँधी है । सड़कें वीरान हो जाती है, गलियों का उछाह मूर्छित हो जाता है । तहसील-कचहरी के बाबू लोग पैजामा-कुरता में—छतरी लगाये या तौलिया डाले झमझमाते पानी में भी निकल पड़ते हैं, बाकी लोगों के गोल के गोल बैठते हैं ।

कव्वाली, गज़ल, रसिया के शौकीन मोटर के अड्डों पर; और आल्हा के शौक़ीन तमाखू वाले आढ़तियों के यहाँ जमा हो जाते हैं । मोटर अड्डों पर खासा मजमा रहता है । दर्जी और दफ्तरी का काम करने वाले आँखों में सुरमा डाल कर पान की गिलौरी मुँह में भरे आलाप लेते हैं—ए. . . . ए . . . जी आहें न भरीं । और तालियों की चटक मस्ती का समाँ बाँध देती है । ढोलक की हुमक के साथ मजलिसी लोगों की कमर थाप देती है ।

और उधर, सरौते का एक हत्था पैर से दबाये, दूसरा हत्था मशीन की तरह चलता रहता है, रेशम से बारीक सुपारी के दोहरे कटते जाते हैं । निगाह अपना काम करती है, घुटने के पास रखी आल्हा से "सुनवाँ का गौना" गाया जाता है ।

हर साल एक-सी मुसीबत सहते-सहते अब लोग अभ्यस्त हो गये हैं । इसलिये अजीब उदासी भरी बेफ़िक्री के दिन होते हैं ये । बड़े उदास, पर बड़े मोहक । छतनार इमली के पेड़ों से पानी झरता रहता, उसी के नीचे भुट्टे भुँजते । बरसते पानी की पेंगों पर किसी अल्हैत का पौरुष भरा स्वर आता—बाँध सिरोही दोनों भिरि गये, खटखट चलन लगी तलवार । और बादलों की सेना गड़गड़ा कर

जूझ जाती। सन्नाती हवा के झोंके पानी की धार को दानों की तरह बिखेर देते। आल्हा की तलवार की तरह बिजली चमक कर कड़कती चली जाती। इमली के फूल, पिलछहें-सफेद नन्हें फूल, पारिजात की तरह झर-झर बिखर जाते।

गोबर से लिपे-पुते घरों के आँगनों में वर्षा के प्रकोप को कम करने के लिए लोढ़े से बढ़नियाँ दब जातीं और देवियों की मनौतियाँ होतीं। मंडी के फड़ निर्जीव नज़र आते। बादल का रुख देख कर गल्ले का भाव घटता-बढ़ता रहता...।

बरसात खतम होते-होते दिवाली-दशहरे की धूम शुरू होती। घरों को बहुरिया की तरह सजाया जाता है। फूली और सूजी कच्ची दीवारों को खरोंच-खरोंच कर मिट्टी से लेप लेते। मुडेरों की काली पड़ी हुई घासें साफ़ हो जातीं। दरवाज़े गेरू से पुत जाते। द्वार और ताखों पर अनगढ़ हाथों के बेल-बूटे बनते। कोई दरवाज़े पर तिरंगा झंडा बनाकर और 'जै हिन्द' लिखकर सजावट पूरी कर लेता। फिर रौनक के दिन। रामलीला की धूम। मंडी का धर्मादा साल भर इसीलिये इकट्ठा होता था। मंडली आती और झम्मनलाल की मंडी में स्टेज बनता।

शाम से ही रामलीला की धूम थी। भीड़ जमा हो चुकी थी। दर्शकों में शोर मच रहा था।

पर्दा उठने में देर होती देख पंडित जी करतालें लेकर मंच पर आ गये। दायीं ओर पुरुष समूह था, बायीं ओर नारियों का। बीच की पतली राह पर झगड़े-फसाद और औरतों के साथ छेड़खानी करने वालों की हरकतें रोकने के लिये जगह-जगह बजरंग मंडली के स्वयंसेवक खड़े थे। पंडित जी ने एक निगाह जन-समूह पर दौड़ायी और कुछ बोले, जो जनरव में उभर नहीं पाया। करतालें बजायीं तो निकट का भक्त समुदाय शान्त हुआ, लेकिन पीछे वालों का शोर ऊँचा हो गया। पैर वाले हारमोनियम पर बाजा मास्टर दर्जी की

तरह बैठे थे। उन्हें पंडित जी के इंगित का इन्तज़ार था। पंडित जी पूरी आवाज़ से चीखे—"सज्जनो और देवियो!" अपनी आवाज़ का असर न होते देख उन्होंने बाजा मास्टर को इशारा किया।

बाजा मास्टर ने हारमोनियम पर रखे हुए फूलों को सामने रखी रामायण की पोथी पर बिखरा दिया और कुंजियों पर मकड़े के टाँगों की तरह उंगलियां टिका दीं। पैंरों में हरकत हुई और धुन फूट पड़ी—"रघुपति राघव राजारामं..." पंडित जी की करतालें ऐसे बोल पड़ीं जैसे कोई गँवार गांव की वधू लच्छे और झांझों के साथ पैरों में खड़ाऊँ पहने धीर गति से चली जा रही हो। तब-लची भीतर मूर्तियों का शृंगार कर रहे थे। पुरुषों में थोड़ी शान्ति छा गयी; लेकिन औरतों की मजलिस बदस्तूर बातों में मशगूल थी! एकाध आवाजें आ कर मंच से टकराईं—"लीला शुरू करो... पर्दा उठाओ!"

शृंगार में देर थी। कुछ परेशान होते हुए पंडित जी ने करतालें बजाना रोकते हुए बाजा मास्टर से कहा—"फ़िलमी बजाओ... फिलमी।" और खुद उसका असर देखने के लिये बगलों में हाथ देकर शिला की तरह खड़े हो गये, जैसे यह शोर उनकी सामर्थ्य की चुनौती हो।

बाजा मास्टर ने बाल झटके और हारमोनियम से एक बड़ी दर्द भरी सदा उठी—"जब तुम्हीं चले परदेस लगाकर ठेस..." बाजा मास्टर के हारमोनियम से उठती हुई स्वर-लहरियाँ वातावरण पर छाने लगीं और जब एक चीत्कार के साथ गीत की धुन समाप्त हुई तो फुसफुसाहट उभरने लगी। कातर होकर पंडित जी ऊँची आवाज़ में बोलने लगे—"माताओ और बहनो! आप लोगों से विशेषकर एक बात कहनी है। आप देवियाँ मरियादा पुरुसोतम भगवान् राम-चन्द्र की लीलायें देखने के हेतु आती हैं, लेकिन अपनी घरेलू चर्चा यहाँ भी चालू रखती हैं। सो ऐसी माताओं और बहिनों के लिए उपदेस है कि..." पंडित जी मोटी-पतली आवाज़ में इस तरह

बोले जा रहे थे जैसे कोई उनकी चाबी कम-ज्यादा करता जा रहा हो। तभी शोर और बढ़ गया। पंडित जी लाल-पीले होकर चीखे—"जो इन उपदेसों पर कान नहीं देंगी... मैं कहता हूँ कि जो इन उपदेसों पर कान नहीं देंगी...भगवान् की लीला में हर तरह से विघन डालेंगी सो अगले जन्म में छछुन्दर की योनी पावेंगी।" शाप देकर पंडित जी पर्दा सरकाकर एकदम अर्न्तध्यान हो गये। पर शोर बढ़ता गया और स्वयं भगवान् के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे स्थिति को काबू में लायें। इसलिए गोला दगा और तबले पर पड़ती थापों के साथ हारमोनियम के मंद स्वर के सहारे पर्दा धीरे-धीरे उठने लगा।

वनवासी राम, लक्ष्मण और पराक्रमी पवनसुत के दर्शन होते ही जनता ने भक्ति से घोर जयघोष किया—"बोल रजा रामचंद की जै....बोल लखन लाल की जै...पवनसुत हनूमान की जै...।"

"रामचंद कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुनम्" के साथ आरती होने लगी। शान्ति में सदैव पवित्रता का बोध होता है... चारों ओर पावनता बरसने लगी। संगीत, स्वर और श्वासें तक संयम में बँध गयीं। रोते बच्चों के मुँह में माँओं ने स्तन दे दिये। रामचंद जी कहीं बीड़ी पीते न देख लें, इसलिये बीड़ियों की चिन-गारियाँ धरती से रगड़ कर बुझा दी गयीं।

आरती समाप्त होते ही पवित्र ज्योति दो थालों में स्थानान्त-रित हो गयी। नारियों के समूह में आरती का थाल ले जानेवाले कई मुरीद थे। लेकिन धोती-कुर्ता और बास्कट पहने हुए शिवराज के हाथों में थाल थमाते हुए पंडित जी ने पूछा—"डिराइवर साहब आये हैं ?"

"आये होंगे...।"

"तुम्हें नहीं मालूम ?"

"आखिरी मोटर लेके आने वाले थे, आ गयी होगी तो आये

होंगे . . .।" कहते हुए उसने थाल लिया और नारियों वाले भाग में जा घुसा। जाते-जाते मास्टर की ओर उसने देखा था, आँखें मिलते ही किसी साजिश की परछाईं उनमें भर गयी थी। बाजा मास्टर ने मुस्करा कर भीड़ के एक कोने पर दृष्टिपात किया। अपनी गलती समझ कर उसकी गर्दन झुक गयी, अँगुलियाँ हारमोनियम के तारों के पिंजर वाले हिस्से में कुछ सुधारने लगीं। शिवराज को औरतों में आरती घुमाते देखकर पाकड़ के नीचे बैठे जवानों के जमघट में कानाफूसी शुरू हुई—"बड़ा हरामी है साला . . .!"

"बड़े बुल्ले से रहता है . . .डिराइवरों का माल खाता है।"

"जनखा है ससुरा . .सरनामसिंह के बल पै कूदता है . . .।"

"कोई कह रहा था, सरनामसिंह का रिस्तेदार है . . .।"

"रिस्तेदार नहीं तो . . . .। वह ठाकुर ये ब्राह्मण, अरे उसने पाल रखा है।"

"देख . . देख . ." एक ने जल्दी से दूसरे की बाँह पकड़ते हुए दिखाया, "शान्ती से बात कर रहा है, निकल के इधर आये तो साले की कुटम्मस कर दी जाय।"

"अच्छा अच्छा खेल देखो . . .।" एक ने कहा। उधर मंच पर न जाने कब मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध शुरू हो चुका था।

बाजा मास्टर और तबलची अपने संगीत से उसके प्रभाव को गहन कर रहे थे। दर्शक उत्सुकता से साँस रोके देख रहे थे कि औरतों वाले हिस्से में कुहराम मच गया। जैसे नीचे से ज़मीन धसक गयी हो। बचत के लिये वे दिशा-ज्ञान भूलकर इधर-उधर भागने लगीं। स्वयंसेवक एक दम भाग पड़े। जनता उठ कर खड़ी हो गयी . . .। मंच पर सन्नाटा छा गया। मेघनाद मंच से उतरकर घबराये से उधर भागे। कमेटी के लोग उधर पहुँच गये थे। स्थिति का पता चलते ही हँसी का फव्वारा फ़ूट पड़ा। और लोगों ने फ़ौरन फाटक की तरफ़ भी देखा—रंगीले पेड़ से उतर कर अपनी धोती का फेंटा कसते हुए उधर भागा जा रहा था . . .।

"इसी की बदमाशी है . .और कोई नहीं हो सकता . . ।"

"यह सब तुम्हारा सर चढ़ाया हुआ है सरनामसिंह, नहीं तो मजाल है कोई विघ्न डाल दे इस तरह . .।" मंडी के जगदम्बा कह रहे थे ।

सरनामसिंह को हँसी आ गयी "दद्दा, तुम भी बस लड़कों की तरह बतियाने लगते हो, वह जब तक कोई बदमाशी नहीं कर लेगा, मानेगा नहीं ....मैं डाँट दूँ, पर कोई फ़ायदा नहीं, मनमौजी है ससुरा . . .।"

तब तक एक स्वयंसेवक अपने पौरुष का प्रदर्शन करते हुए गनगौरी साँप लटकाये सामने आ गया ।

"फेंको । उधर . . . ।" हरीचंद बोले, "औरतों की भीड़ में डाल गया बदमाश। कल से निगाह रखो, घुसने मत दो साले को यहाँ . . .।"

"अच्छा, अच्छा . .सब ठीक हो जायेगा," सरनामसिंह ने कंधे से लोगों को बैठाते हुए कहा। फिर वहीं से चीख के नाटक वालों से बोले—"शुरू करो ...शुरू करो लीला. . .भूचाल नहीं आया था ।" कहते-कहते उसे फिर हँसी आ गयी । नयी बात तो थी नहीं, न जाने रंगीले कौन-सा नया तमाशा खड़ा कर देता । उसके लिये कोई मुश्किल है ! होली, दिवाली मेले-तमाशों में जब तक यह सब न हो, सूना-सूना लगता है ।

"रंगीले तुम्हारी मोटर पर नौकर था, अब नहीं है क्या ?" हरीचंद पूछे जा रहे थे ।

"सेठ के मुकदमें में गवाही देने से इनकार कर गया, फिर कहीं नौकरी चलती है । हमने भी जोर नहीं दिया, नहीं तो गवाही दिलवा देना कोई मुश्किल नहीं था . . .।"

तभी सरनामसिंह की बात काटकर जगदम्बा बोल पड़े—"गुड़ खाय गुलगुले से परहेज । तुम भी ठाकुर साहब बस . . .वह

साला पेशेवर गवाह है, कोई ईमान है उसका। पैसे का डौल नहीं होगा सेठ के यहाँ, जिसने चार पैसे से हथेली गरमा दी, उसी की तरफ़ हो गया होगा . . .।"

ये बातें चल ही रही थीं कि लक्ष्मण जी को शक्ति लग गयी। जन-समूह अवसाद की भावना में डूब गया। चारों ओर नीरवता छा गयी। जैसे यह अप्रत्याशित घटना आज ही हुई हो, सब के लिये नयी हो।

लीला के साथ-साथ रामायण बाँचने वाले गुरु जी चुप हो गये थे। रण-संगीत थम चुका था। आसन्न भय और शोक की कालिमा चारों ओर छा गयी। तभी उस गहन उदासी और अवसाद से भरे क्षण के बीच पृष्ठभूमि से सूत्रधार की ढाढ़स बँधाती हुई आवाज़ उभरने लगी . . .। "बन्धुओ ! यह कौतुक जानहिं जन सोई, जापर कृपा राम की होई . . .जगत आधार श्री लक्ष्मण जी मूर्छित होते भये हैं, उनके शक्ति लगी है। पर ये ही स्थल संग्राम की शोभा हैं। रघुनाथजी के कौतूहल चरित्तर कौन सांसारिक जान सकै है, परन्तु इस चरित्तर को वो ही जानेगा, जिस पर रघुनाथ जी की कृपा होगी ... तो सज्जनो ! संध्या होती भयी है। सेनाएँ विश्राम के हेतु लौट जाती भयी हैं। महावीर जी गोदी में लक्ष्मण जी को लिये आते हैं। यह दशा देख रघुनाथ जी ने बड़ा दुख माना . . .।"

लक्ष्मण जी रामचन्द्र जी की गोद में सिर रखे मूर्छित पड़े थे। जामवंत के बताने पर सुषेण वैद्य को जब हनूमान जी खटिया समेत उठा ले आये, तब कहीं दर्शकों की जान में जान आयी। सुषेण वैद्य को सुप्तावस्था में उठा लाने पर पहली हँसी फूट पड़ी मूर्छित लक्ष्मण के अधरों पर। हँसी फूटती देख, पंडित जी ने विंग से निकलकर घुड़कते हुए उन्हें चादर से ढँक दिया।

हनूमान जी बूटी लाने के लिये प्रस्थान कर चुके थे। रात ढलती जा रही थी। राम दल के बानर शोक-संतप्त से चारों ओर घेरे खड़े थे। और जब रामचन्द्र ने रुँधे हुए गले से कहा—"सुत वित

नारि भवन परिवारा, होहिं जाहिं जग बारहिं बारा। अस विचारि जिय जागहु ताता, मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता।" तब सुनते-सुनते न जाने कितनी की आँखों के बाँध टूट गये। सिसकियाँ फूट पड़ीं। समस्त जग, चराचर व्याकुल था, शोकसंतप्त था। हिचकियाँ बँध गयीं। सरनामसिंह अपनी आँखों को बार-बार पोंछते जा रहे थे, पर आँसू नहीं थमते थे। पास बैठे लोगों की सिसकियों के बीच हर एक का मन डूबता जा रहा था। कोई ढाढ़स बँधाने वाला नहीं था। जैसे सब के मन में यही था कि सूर्योदय से पूर्व हनूमान जी संजीवनी जड़ी लेकर आ जायें...यह अनर्थ न हो। पर समय जैसे उड़ा जा रहा था। सूर्योदय की वेला निकट आती जा रही थी। रामचन्द्र जी व्याकुल आकाश मार्ग की ओर निहार रहे थे। और तब बाजा मास्टर का हारमोनियम मंद स्वर में गुनगुनाया और रामचन्द्र जी ने विलाप करते-करते जरा खँखार कर गाया—"आ जाओ कि मूर्छित है लक्ष्मण...अब रात गुज़रने वाली है,... अब रात गुज़रने वाली है...।"

भीड़ में से एक हाथ उठा और उस हाथ की धरोहर विंग में खड़े पंडित जी के पास पहुँच गयी। एकदम मंच पर आकर पंडित जी ने आभार प्रदर्शन किया—"श्रीरामचन्द्र जी के विलाप पर प्रसन्न होकर सेठ बदामीलाल ने भगवान् जी के श्रीचरनों में पाँच रुपये अर्पण किये हैं...हम उनका मंडली की ओर से शुक्रिया अदा करते हैं।" फिर तो ताँता लग गया। वाकई लक्ष्मण शक्ति वाली लीला ऐसी निकली, जैसी पहले कभी नहीं हुई। भक्तों का समुदाय उदारता से उमड़ पड़ा। मंच पर भक्त समुदाय की भीड़ लग गयी, लोग जा-जाकर खुद रुपये देने लगे। जगह कम पड़ी तो तबलची थोड़ा विंग में सरक गये। राम जी की चढ़ौती देखने के लिये मूर्छित लक्ष्मणजी ने चदरा सरका कर देखने भर के लिए मुँह खोल लिया। तब तक एक भक्त ने अपने लिये जगह बनाते हुए विंग का पर्दा उलट दिया तो हनूमान जी बगल में गत्ते का द्रोणागिरि रखे, बड़ी मौज से बीड़ी पीते हुए अपने प्रवेश के इन्तजार में बैठे नज़र आए।

मंच पर भीड़ बढ़ती देख कमेटी के लोगों ने पहुँचकर इन्तज़ाम अपने हाथ में ले लिया। तभी आरती का थाल लेकर शिवराज भीतर आया। पंडितजी ने चढ़ौती की रकम गिनने का काम शिवराज को सौंपते हुए सरनामसिंह की ओर इस तरह देखा, जैसे उनके लिए शिवराज सबसे महत्त्वपूर्ण है। सरनामसिंह ने पास जाते हुए कहा—"शिवराज, पहले जा के खाना खाओ . .यह सब होता रहेगा। पंडित जी इसे सँभालिये . . .।" कहते हुए उसने शिवराज को बाँह पकड़ कर उठा दिया।

"अभी चले जायेंगे।" कहता हुआ शिवराज बाजा मास्टर की ओर चला गया। पर्दा गिर चुका था। बाजा मास्टर हारमोनियम से उठ चुके थे। वे दोनों नीचे उतरने ही वाले थे कि सरनामसिंह ने ज़रा डाँटते हुए कहा—"ये क्या लड़कपन है। सीधे जाओ और खाना खा कर घर पहुँचो . . .।"

"वहीं जा रहे हैं . . .मास्टर साहब भी उसी होटल में खाते हैं।" शिवराज बोला और दोनों उतर कर चले गये। दर्शक घरों को लौट रहे थे।

शिवराज और बाजा मास्टर पटरी के एक घने पेड़ के अँधियारे में आकर रुक गये। दूर से आती परछाइयों को उनकी आवाज़ से पहचानने की कोशिश करते। उनकी बातें रुक जातीं, असम्बद्ध व्यक्तियों के गुज़रते ही बातें फिर शुरू हो जातीं, पर सतर्कता और भी बढ़ जाती। बाजा मास्टर ने फुसफुसा कर कहा—"आज भी फूल आये थे।"

"तुम्हारा बाजा कमाल कर देता है। किसी फिल्म कम्पनी में होते तो चमक जाते।" शिवराज ने बड़े उत्साह से कहा।

"यहाँ इन लोगों के साथ टिकूँगा !" बाजा मास्टर ने कहा। निकट आते स्वरों को सुन कर दोनों सतर्क हुए। शिवराज फुस-फुसा—"वही है . . .।" और इस परिचित अपरिचित "वही" का अनुभव होते ही दोनों ऐसे अलग-अलग से खड़े रह गये, जैसे साथ

उग हुए ताड़ के पेड़, जिनके पत्ते लहरा कर भी एक दूसरे को नहीं छू पाते ।

औरतों और लड़कियों की वह टोली हँसती-खिलखिलाती आगे बढ़ गयी । राह के अँधेरे में दूर जाते हुए स्वर और भी मोहक हो गये । बाजा मास्टर बोले—"बाजे के बोल और इस बोल में कितना फरक है । मन में आता है यह गाना-बजाना सब छोड़ दूँ । काठ की आवाज पर तुम रीझ जाते हो . . .।" कहते-कहते बाजा मास्टर किसी भीतरी व्यथा से उदास हो आये । शिवराज ने हाथ पकड़ते हुए कहा—"आओ तो, थोड़ी दूर तक . . .।"

सड़कों-गलियों के चक्कर काटकर जब दोनों वापस आये, तब सराय के बाहर वाले होटल के महराज सोने का इन्तज़ाम कर रहे थे । भुनभुनाते हुए उठे और खाने का इन्तज़ाम करने लगे ।

शिवराज ने बाजा मास्टर की ओर टूटी हुई बात का क्रम जोड़ने के लिए देखा । बाजा मास्टर ने होटल की बुझती हुई अँगीठी की ओर देखकर कहा—"सबसे बुरा यही लगता है शिवराज कि लोग अजीब हिकारत से देखते हैं ।, आज बड़ी-बड़ी संगीत सभाओं में जाता होता तो कदर और ही होती; लेकिन यह सब अपने बस का नहीं, जब तक यों ही घूमता-फिरता हूँ, तब तक लगता है यह सब बेकार है, न इज्जत न पैसा, न दोस्त न हमदर्द । बाजे से उठते ही दूसरा आदमी हो जाता हूँ । लेकिन जाने कैसा नशा चढ़ता है बजाते वक़्त । फिर कहीं भी बैठा दो । नरक में बैठ सकता हूँ । इन छोटे-छोटे शहरों में घूमते-घूमते जी भर गया । नौटंकी वालों का साथ किया, कितनी ड्रामा-कम्पनियों के साथ घूमा, संगीत की ट्यूशनें कीं, पर कहीं भी कुछ ऐसा नहीं मिला, जिससे मन को सन्तोष मिलता । यार सब बेकार है . .।"

शिवराज उनका मुँह ताक रहा था, जैसे उसके लिए यह समझ सकना दुष्कर हो ।

तभी दो-तीन आदमियों की उधर आती हुई छायाएँ दिखायी दीं। चौराहे की गैस बुझ कर काँटें में फँसी निर्जीव मछली की तरह लटक रही थी। सरनामसिंह के साथ सूबेदार और ज़ाकिर मियाँ थे। दोनों दड़े की दलाली और मोटर-अड्डे की रखवाली करते हैं। उन्हें साथ देखकर शिवराज हमेशा की तरह कुढ़ गया।

"कमीशन का हिसाब साफ़ हो गया। सब को दे दिया...यह तुम्हारे..।" कहते हुए सूबेदार ने सौ रुपये के नोट सरनामसिंह के हाथ में थमा दिये। उन्हें अपनी मुर्री में लगाते हुए सरनामसिंह बोला, "उस कुम्भकरन को तड़के जगा के गाड़ी सफा करवा देना।"

"पहली से जाना है?" सूबेदार ने पूछा।

"क्या कहें सेठ के बच्चे को, रोज़ डयूटी बदलती है, ड्राइवर न हुए कोचवान हो गये, जब चाहा तब जोत दिया। पहली से जाऊँगा, शाम की से वापसी है...भूलना मत।"

"सवेरे नम्बर खुलना है...तुम्हारे बगैर दद्दा..।" सूबेदार ने दड़े के नम्बर की ओर इशारा किया।

"अब खोलना।" झुँझलाते हुए सरनामसिंह ने कहा, "ऐसे मुँह ताकोगे तो हो लिया काम। तुम दो आदमी नहीं सँभाल सकते।" फिर शिवराज से बोले, "चल भई चल, बहुत रात हो गयी।"

सूबेदार और ज़ाकिर मियाँ अड्डे की ओर चले गये। बाजा मास्टर कुछ दूर तक साथ आकर मंदिर की ओर मुड़ गये। सरनामसिंह और शिवराज जब अकेले रह गये तो सरनामसिंह ने कहा—"यह तुम्हारा आधी-आधी रात तक घूमना मुझे पसन्द नहीं..रामलीला जाने से पहले खाना खाओ, खतम होने पर सीधे घर पहुँचो। दोहरी चाबी है, एक अपने जनेऊ में बाँध के रखो..।" कुछ बिगड़ते-बिगड़ते शिवराज की वास्कट देखकर एकदम बात बदल क-र-"वह नयी वाली किस दिन के लिए है। मेरी पसन्द की चीज़ तुम्हें काँटे की तरह काटती हैं। ठीक है, पड़ी रहने दो।" कहते कहते सरनामसिंह तरल हो आया।

शिवराज इस तरलता से परिचित था। यह नयी भी नहीं। ऐसे क्षणों में वह हमेशा घुटता था। लेकिन वह यह घुटन अकेले में पी जाता था। भूलकर या अपनी रौ में कभी सरनामसिंह किसी अन्य के सामने स्नेह जताने लगता तो शिवराज अपनी पिटी हुई पुंसकता के बावजूद भी फुफकार उठता। अपने को खुद-मुख्तार और निर्बन्ध घोषित करने के रोष में यहाँ तक कह जाता—"मैं अपना देख-समझ लूंगा। तुम अपना देखो।"

सरनामसिंह तब संकुचित हो गया। अपनी गलती को बड़ी चतुराई से दबाकर कहता 'आखिर ब्राह्मन का बेटा है।" और उपस्थित आदमियों को जैसे सफ़ाई देने लगता "इसके तो पैर तक छूना पुन्न है।"

और शिवराज !

बड़ी-बड़ी बातें फैली थीं उसे लेकर। इस बस्ती का मुँह, शिवराज ने चार साल हुए, गुरु पूर्णिमा से एक महीना पहले देखा था। इन बाजारों में घूमते हुए साधु, संन्यासी, तांत्रिक योगाभ्यासी देखें होंगे लोगों ने। ऐसे ही एक महात्मा इधर आ गये थे। ईश्वर भक्ति से अधिक वे बस्ती की महत्ता पर बात करते और एक आश्रम बनाने का स्वप्न देखते।

कई बरस पहले उनकी फेरी शाम को होती थी—"बद्रीधाम यात्रा की प्रतिज्ञा है महराज जी....एक मन आटा, दस सेर घी, बीस सेर चावल और पाँच सौ रुपये का सवाल है भगवान् जी। भेजो श्रीकृष्ण जी महराज !" और इसके बाद उनका घंटा गलियों में गूंजता रहता। किसी ने उन्हें दान प्राप्त करते नहीं देखा, पर सुना कौल पूरा हो गया और सर्वदानन्द जी बद्रीधाम की यात्रा पर चले गये।

यात्रा पर जाने से पूर्व उन्होंने निवास के लिए सुनसान में, बस्ती से दूर एक कुटिया छवा ली थी। न जाने कहाँ से तैंतीस

कोटि देवताओं में से किसी एक की प्रतिमा भी आ गयी थी और पीपल का बिरवा भी उग आया था।

'भगवान् की महिमा है। जिस ऊसर पर दूब तक नहीं होती, वहाँ मूरती के परताप से पीपल जम आया।' लोग कहते।

ऊपरवाले की महिमा फैलती गयी और सर्वदानन्द जिले भर में मशहूर हो गये। भगवान् की कृपा वे दोनों हाथ उलीचने लगे कि एक चमत्कार हो गया। जयकरन मिठाई वाले को बुढ़ापे में पुत्र-लाभ हो गया। चार ब्याह किये उसने, पर वंश नहीं चला। आखिर चौथी से कुल का दीपक चमका। सर्वदानन्द का जगह-जगह बखान होने लगा। और तब से जयकरन की घरवाली तो उन्हें गुरु मानकर दासी हो गयी। सर्वदानन्द जी ने सेवा स्वीकार कर ली, यही क्या कम था? नहीं तो नारी! पाप का मूल। लेकिन उस पाप की मूल में ऐसा पानी लगा कि हर साल फूलने-फलने लगी। और सर्वदानन्द जी के आश्रम की नींव पड़ गयी। जयकरन भगत हो गये। उनकी तो ऐसी लौ लगी कि दुकान नौकर के सिपुर्द कर उन्होंने सिर मुड़ा लिया और आश्रम की इमारत के लिए चन्दा करने निकल पड़े। आखिर आश्रम बनना शुरू हुआ और दस बरस पहले गुरु पूर्णिमा के दिन उत्सव, कीर्तन आदि के साथ विधिवत उद्घाटन हो गया। तब से एक लीक बन गयी। हर बरस गुरु पूनो पर सत्संग होने लगा। दूर-दूर के साधु-महात्मा पधारने लगे।

चार बरस पहले बड़ा भारी उत्सव हुआ। सर्वदानन्द जी के चेले गाँव-गाँव बस्ती-बस्ती गये। एक महीना पहले से गुरु पूनो के लिये तैयारी प्रारम्भ हुई। आश्रम में अब तक दस-बीस बाबा और आ चुके थे, और सर्वदानन्द जी की मंडली बन चुकी थी। प्रधान शिष्य थे.. आत्मानंद, जात के ब्राह्मण। बाकी चार जात के हलवाई थे.. गुणानन्द, ज्ञानानंद, वेदानंद और शिवानन्द।

गुरु पूनो का आयोजन शुरू हुआ। चार-पाँच महीने पहले आयोजन और भंडारे का इन्तजाम करने के लिए साधु जिले भर में

टिड्डी की तरह फैल गये। भक्तों ने अपने आवारा लड़के आश्रम को अर्पित करते हुए उनके सिपुर्द कर दिये। पर शिवराज की बात दूसरी थी। उसके पिता उस समय जीवित थे। उन्होंने गुणानन्द जी के चरणों में बालक को अर्पित करते हुए बड़े दीन भाव से कहा था—"आज आपके सिरी चरनों में ही इसका उद्धार है। हम पातकियों के घर में इसका विकास कैसे होगा महराज। इसे अपने चरनों में सरन देकर विद्यादान दें...संस्कृत पढ़ जाय वेद शास्त्र..।"

शिवराज तब तेरह बरस का था। अपने पर्यटन से लौटते हुए स्वामी जी उसे साथ लेते आये थे। तीन चार लड़के और भी थे, जो सब निर्बोध हिरनों की तरह एक दूसरे को चकित भाव से देख रहे थे..।

आश्रम पहुँचकर शिवराज को अन्य अनेक साथी मिले जो और साधुओं के साथ आये थे। ब्रह्मचारी व्रत के लिये करीब तीस किशोरों की जमात जमा हुई। महीना भर पहले से अन्न त्याग हुआ और लड़कों को नियमावली दे दी गयी।

शिवराज का नया जीवन आरम्भ हुआ। सिर मुड़ा कर चोटी रखा दी गयी, पैरों में खड़ाऊँ और शरीर पर पीत अचला। नासिका से लेकर मस्तक तक शिव तिलक और महीने भर का मौन।

रामायण की महिमा भी अपार है। गूंगे का साधन बन गयी। कोई आवश्यकता होती तो केवल रामायण की चौपाई से व्यक्त की जाती। मौन खंडित होने का दंड था। गायत्री मंत्र का मन ही मन बीस बार जाप। सचमुच ऐसी आराम की जिन्दगी की कल्पना उन बालकों को न थी। अधिकांश ब्राह्मणों के बेटे थे। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर भगवद्-स्मरण, सूर्य-नमस्कार, मध्यान्ह में भागवत-गीता पाठ और संध्या समय उच्चरित कीर्तन। रोज कीर्तन होता था। कीर्तन के समय ब्रह्मचारी सबसे आगे बैठे थे, उनके पीछे भक्तों का समुदाय था। मृदंग और हारमोनियम पर कीर्तन हो रहा था। कीर्तन पूरे जोर पर था। स्वामी ज्ञानानंद रस विभोर होकर प्रतिमा

के सामने नाचने लग और इधर रंगीले ऐसा लवलीन हुआ कि गश खाकर चित हो गया...। झूमते हुए लोगों ने देखा, कीर्तन थम गया और भीड़ एकदम झुक पड़ी—"भगवान् की अनुकम्पा हुई है : कुपढ़ा है तो क्या, प्रेम तो सबके मन में एक जैसा है।" एक भक्त ने बेहोश रंगीले के मस्तक पर भगवान् की चरण रज लगाते हुए कहा—"ऐसे में पंछी उड़कर स्वर्गलोक को जाता है...गणिका, अजामिल के वृत्तान्त सामने हैं। कौन ऐसी मृत्यु नहीं चाहेगा?"

स्वामी जी को खबर हो गयी। "हरे राम, हरे कृष्ण," जपते हुए स्वामी जी अपनी कुटिया से निकल कर आये। रंगीले को चित्त देखकर विह्वल हो गये। आँखों में अश्रु छलक आये। गदगद कंठ से बाहें पसारते हुए बुदबुदाये—"हे प्रभु! तेरी माया अपरम्पार है।" और रंगीले को जैसे अपने से बड़ा स्वीकार करते हुए बोले—"यही समाधि की प्रथमावस्था है।"

जो ब्रह्मचारी छींटें देने के लिये पानी लाया था, वह शिवराज था। सरनामसिंह ने उसके हाथ से लोटा लेकर झाड़-फूंक करने वाले की तरह मुँह पर छींटे दिये। एक लोटा पानी पड़ गया, पर रंगीले की दाँती नहीं खुली। कुछ और उपचार के बाद उसने आँखें खोलीं और सामने खड़े शिवराज की ओर एक क्षण देखकर टागें पकड़कर पैरों पर लोटने लगा—यही रूप है..हाय...हाय..।"

"ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् का रूप देख रहा है।" सरनामसिंह ने कहा और रंगीले को सँभालने लगा। सब आश्चर्यचकित से देख रहे थे। रंगीले शिवराज के पैर छोड़ता ही नहीं था—सरन दो..इन चरनों में सरन दो...मुक्त करो..।" शिवराज घबराया-सा पैर छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। कई मिनट बाद रंगीले संसार में लौटा।

'बिल्कुल यही रूप था।' आधी रात को मोटरवालों के संग लौटते हुए शिवराज की ओर इशारा करके रंगीले अपनी अवस्था का वर्णन कर रहा था—'हाथों में धनुष-बान, सर पर मुकुट। न

जाने कैसा तेज फूट रहा था। आँखें मुद गयीं..चारों ओर वही रूप, वही छवि..सच्ची दद्दा! सरनामसिंह की बाँह पकड़ते हुए उसने समझाया—"सन्नाटा छा गया। भीतर रोशनी जग गयी.. साक्षात् भगवान खड़े थे सामने। फिर नहीं मालूम क्या हुआ... बड़ा जुल्म किया तुमने, राम कसम..बेहोशी नहीं थी..।"

उस रोज से ब्रह्मचारियों में शिवराज की और भक्तों में रंगीले की प्रतिष्ठा बढ़ गयी। दोनों में भगवान का 'अंस' प्रवेश कर गया था.. काया पवित्र हो गयी भाई! रंगीले निकलता तो लोग जबरदस्ती रोककर बैठा लेते। घंटों उससे बातें करते और उसका प्रवचन सुनते—'इसी तरह सुभाष बाबू के मन में भारतमाता पैठ गयी थीं। वैसे वे विक्टोरिया को बहुत चाहते थे, पर माता को माता! भेष बदलना पड़ा उन्हें, वन-वन घूमे और जाके अलख जगाई। इसी से आज़ादी मिली। उन्हीं के परताप से गांधी बाबा और नेहरूजी ने बागडोर सँभाली।' फिर भँगेड़ियों की तरह आँखें चढ़ाकर शून्य में देखते हुए कहता—"हमें भी भेष बदलना है, वन-वन घूमकर अलख जगाना है....।"

"काहे के लिए रंगीले बाबा।" पनवाड़ी पूछ लेता।

जवाब न देकर रंगीले मुस्कुराता हुआ उठ जाता। सरनाम सिंह के पास जाकर कुछ उगाहता और फल-फलारी लेकर आश्रम की ओर मुँह करता। ब्रह्मचारी शिवराज के लिए रंगीले रोज कुछ न कुछ लेकर जाता। आश्रम के ब्रह्मचारी ऐसे दान को स्वीकार करते थे।

तीन-चार रोज शिवराज रंगीले का फलाहार स्वीकार करके स्वयं भंडारे में दे आता था, पर बाद में उसे कुछ खलने लगा। रंगीले उसे अपने पास बैठा लेता, तरह-तरह की बातें करता—'तुम्हारे हाथ कित्ते मुलायम हैं! धन्न हैं तुम्हारे माँ-बाप। भइयन, कभी चला करो...शहर घुमा लाया करें" पर मौन व्रत के कारण शिवराज हाँ हूँ में उत्तर देता। एक रोज किसी ब्रह्मचारी ने स्वामी जी से

शिवराज की शिकायत कर दी—"ये मौन व्रत का पालन नहीं करता।" तभी से शिवराज कतराने लगा।

गाड़ी शाम तक वापस आ जाती थी और वैसे भी इन रास्तों पर रात में सवारियों के माल-असबाव से भरी लारियाँ लाना कम खतरनाक न था। न जाने कब लुट जायें। उस रोज सरनामसिंह एटा के बाजार से गेरुआ सिल्क की धोती खरीद लाया, रंगीले को देते हुए बोला—"सुन, उस ब्रह्मचारी के लिए है। कैसा कोमल लड़का है, किसी अच्छे घराने का मालूम पड़ता है!"

एकाएक शिवराज की ओर सरनामसिंह को आकर्षित होते देख रंगीले ने आँखें फाड़कर देखा। गुरु पूनो पर ब्रह्मचारियों का मौनव्रत टूटने के बाद रंगीले का समय अधिकतर वहीं बीतने लगा। उसे भेष बदलने की धुन थी।

एक रोज सहसा दोपहर वाली लारी पर शिवराज को आया देख सरनामसिंह देखता रह गया। लारी छूटने में देर थी। अड्डे पर खामोशी छाई थी। इमली की घनी छाँह के नीचे ड्राइवर और अन्य कर्मचारी टाँगें फैलाये पड़े थे। सूबेदार ने शिवराज को देखकर सरनामसिंह को निशाना बनाते हुए कुछ मज़ाक कर दिया। ज़ाकिर मियां खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले—'इधर बुला ला बिरम्भचारी को..।"

"ऐ मियाँ, गड़बड़ मत मचाओ, सुनने दो। हाँ सिंह जी, दूसरी तान छिड़े।"

"उधर आओ खटिया पर..।" सरनामसिंह ने कहा और खुद अपना बैंजो उठाकर उधर चला गया। सारे लोग उठकर खटिया के इर्द-गिर्द जमा हो गये। टूटे हुए ब्लेड के टुकड़े से सरनामसिंह ने बैंजो के तारों पर एक इशारा किंया। एक ध्वनि झनझनाती हुई बिखर गयी।

इमली के नन्हें-नन्हें फूल अलसाये से झर रहे थे।

छप्पर पड़े मोटर अड्डे के दफ्तर से टिकटों का हिसाब करते हुए दो-तीन व्यक्ति निकले और आकर खड़े हो गये । लाल रँगी हुई लारी नम्बर पर लगी हुई है । चार-पाँच सवारियाँ उसकी खिड़कियों से सिर टिकाये ऊँघ रही हैं । अभी देर थी लारी छूटने में । स्टेशन से इक्के अभी नहीं आये हैं । तीन तहसीलों में जाने के लिए सवारियों को यहीं आना है । मील भर दूर से कंकड़ की सड़क पर लोहे की हाल चढ़े इक्के के पहियों की खड़खड़ाहट गूंजने लगती । यह आवाज सूबेदार को सतर्क कर देती है । जितनी सवारियाँ उतना कमीशन । पर इस वक्त सब खामोश हैं । सड़कों पर धुएँ की तरह धूल के बादल घहरा रहे हैं ।

अड्डा शहर के छोर पर था, फरलाँग भर बाद श्मशान फैला पड़ा था और उसके बाद झुके हुए नीमों की दोहरी कतार के बीच यह लम्बी सड़क चली गयी थी । चुंगी पार करते ही बस्ती की सीमा समाप्त हो जाती । यह सड़क ही रीढ़ थी, जिसमें पसलियों की तरह सत्तावन गलियाँ इधर-उधर से आकर मिलती थीं । बड़े शहरों को मिलाने वाली यह चौड़ी सड़क, जिसके दोनों ओर यह छोटी सी बस्ती बस गयी थी ....मील भर की लम्बाई और उतनी ही चौड़ाई । उत्तर-पश्चिम से दक्खिन-पूरब की ओर रुख था इसका । पश्चिमी सिरे पर ज्यादातर वकील-मुख्तार और जमीदारों के मकान थे, पूरब की ओर छोटी जाति और छोटे व्यापारियों, काम-धंधे वालों का बोलबाला था । आबादी बढ़ने के साथ-साथ अड्डा निरन्तर पूरब की ओर खिसकता जाता । ये मोटर वाले ठीक इसी तरह बर्दाश्त किये जाते थे, जैसे घरों में अपने आप जड़ें फोड़ लेने वाला पीपल का पेड़ ।

"उखाड़े कौन . . .सर पर सनीचर सवार है जो घर बैठे विपत मोल ले लें । लेकिन घर में रखे भी कौन. . .चुड़ैलों का डेरा ।"

जैसे पीपल वाले भुतहे मकान वीरान हो जाते, वैसे ही अड्डे के आस-पास का हिस्सा हमेशा वीरान रहता । मोटर वाले पैदाइशी

बदमाश होते हैं साहव। चोर, डकैत, पियक्कड़, फ़रॉस...ज़ालिम, बेरहम लोग...।

पर उस बैंजो से न जाने कैसा मीठा, उदास राग फूट पड़ा। किसी के जुल्म से कराहते हुए उसके तार कँपकँपा कर थक जाते, फ़िर उस पैने ब्लेड के टुकड़े का स्पर्श उन तारों को अनवरत झंझनाता जाता और वे बेरहम उँगलियाँ कोमल पगों की तरह, लय के साथ उन कीलों पर नाचने लगतीं।

कच्चे मकान की बाँसवाली खिड़की पर पड़े हुए टाट के पर्दे से एक चेहरा झाँकता और झुँझला कर सिर भीतर कर लेता। सरनाम बैंजो की कीलों पर से निगाह हटाकर इमली के झरते हुए फलों की ओर देखकर गुनगुनाता—

"नदिया के ईरे-तीरे दुय घन रुखवा एक रे महुलिया एक आम रे।
नगर अजोध्या में दुय वर सुन्दर इक लछमन इक राम रे।"

बैंजो का झनझनाता स्वर और भरी हुई साँस की आवाज़...

"बेर-बेर बेटा तोकों मैं वरजौं वृन्दावन मति जाउ रे।
उतैं वृन्दावन वाघ-बघनियाँ जा देस में कामिनि तुम्हार रे।"

बैठे लोगों के सिर झूमने लगते, और अपने में डूबा सरनाम पागलों की तरह तार झनझनाता हुआ ऊँची हुंकार में गाता—

'देउ न मोरी मैया ढाल तरवरिया वाहि वृन्दावन जाँऊ रे
बघवा कौ मारौं औ लावौं अपनी कामिनियाँ बचाय रे।'

और टाट के पीछे खड़ी कुढ़ती हुई बंसिरी सोचती—"मुझे सुनाता है। बड़ा जुझारु बना है। शरावी-कबावी; डरपोक।" अपने पर दृष्टि दौड़ाती—इस तन पर पड़े हुए इतने दाग़, इतने घाटों का पानी और यह मन की जलन, कहाँ ले जायगी तुझे। यह हाय तुझे राख कर के छोड़ेगी। यह हाय न होती तो तू आज फलता। किसी कच्चे घर के आँगन में वैठकर गाता, कोई सुनता। इमली के सूखे फूल नहीं, काजल लगी आँखों से रसधार झरती! धूल के उड़ते हुए बवंडर नहीं, गोबर लिपी ठंडी धरती होती...महावर रंगे पैर

होते और लिखना से भरी ऐपन की दीवारें। हर तीज-त्योहार होता, रास-रंग होता। जीने, मरनेवाला कोई साथ होता। पर तू अकेला मरेगा...अनजाने आदमियों के बीच। किसे अपना कहेगा? किसी दिन मोटर में बैठा-बैठा मर जायगा, कोई पेट्रोल छिड़क कर जला देगा या भागते-भागते किसी घहराती नदी में घड़ियाल, कछुओं के बीच फ़ेंक आयेगा। यही होगा तेरे साथ। एक दिन मैं सुनूंगी। तेरी खबर मुझ तक आयेगी सरनाम! उस दिन घी के दिए जलाकर रात भर दिवाली मनाऊँगी। तेरी उस दिन की खुशी...

कौड़ियों की तरह चमकती हुई आँखें भूल नहीं पातीं। कितना बड़ा एहसान किया था मुझ पर। शरम नहीं आई थी कहते हुए—"सौदा खतम। मगन मिस्त्री नहीं ले सकता इस औरत को।" औरत को! किधर से औरत थी मैं तेरे लिए। औरत समझ कर अहसान कर रहा था। तेरी मैं कोई नहीं थी। बाज़ारू समझा था। "जब तक ये रुपया पूरा नहीं चुका देगा, तब तक तू रख इसे।" कहते हुए तेरी जीभ नहीं गिर गयी। ...ढाल तलवार माँगता है.. कामिनी को बचायेगा...मेहरा।

बंसिरी की आँखें क्रोध से जलते-जलते न जाने क्यों रुआँसी हो आयीं...जैसे आँख और धुएँ के बीच झिलझिलाती हुई तरल सी चिकनी लहरियाँ। जलती हुई लकड़ी से सुनसुना कर बची हुई एकाध रस-बूँद किसी रेशे से छलछलाकर निकल आयी। तप्त रस-बूंद, जिसे आग की जलन क्षण भर में सोख लेती है...सचमुच सब तेरे कारन हुआ...तू, सरनाम तू। सरनाम...सरदार..सरताज... किसने रखा था नाम तेरा? "पर केवल एक क्षण...तेरा ये ताज जिस दिन गिरेगा, उसी दिन को देखने के लिए ज़िन्दा हूँ। औरत कहता है न मुझे। तेरे कारन औरत हुई... नहीं तो किसी की घरवाली होकर चैन से मर जाती। तूने अपनी समझ से घरवाली बनाया है, पर तेरे लिए औरत रहूँगी। औरत!"

दूर स्टेशन से आती सड़क पर इक्कों के पहिए गड़गड़ा उठे। सूबेदार उड़ती धूल के पार ताककर चीखने लगा। हाथ में लिये मोटर के भोंपू को बीच-बीच में भों-भों बजा देता। उसे सुनकर छूटती हुई लारी के लिए मरियल घोड़ों की पीठ पर सड़ासड़ चाबुक चिपकने लगते और खड़र..खड़..खड़र...खड़ करते भागते हुए इक्कों पर हिचकोले खाती सवारियाँ डर की मारी, रक्षा के लिए पीछे मुँह घुमा लेती। फेन से सने मुँह और लगाम चबाते हुए घोड़े जब रुकते, तब पता चलता—पीछे बँधा टीन का बक्सा रास्ते में गिर गया या गौने का घड़ा दौंची में भट्ट से टूट गया।

अड्डे पर हंगामा मच गया। पीछे आते हुए इक्केवान चाबुक की डंडी पहिए में घुसेड़े किड़र..किड़र..करते, अपने आगमन की सूचना देते भागते आ रहे हैं—"सन्नाम सिंह डिलाइवर की लारी घड़ी देखके छूट जाती है।...फौज का डिलाइवर रहा है सन्नाम सिंह। मोटर चलायेगा तोफान मेल की तरह, पर मजाल है एक पिल्ला तक दब जाय...टकराने की तो बात दूर रही...।"

"काहे असगुनिया बोल बोलते हो भाई।"

पर सगुन, असगुन से दूर सरनाम का मन जब उचाट हो जाता, तब उसे लगता कहीं कुछ हो न जाय। कौन जाने हाथ न सधे और किसी पेड़...पुलिया या पुल से...लड़ाई में किन-किन जगहों पर नहीं दौड़ाई मोटर...मौत के मुँह में जा-जाकर निकल आया, पर ऐसा तो कभी नहीं लगा। जब मन उचाट होता है, तब यह बैंजों और कोई बहुत ही बेहूदा सा गीत। लेकिन यह बैंजो और भी तोड़ देता है। उसका मन तब कहीं नहीं लगता। भरती हुई सवारियों पर एक निगाह डालकर वह सूबेदार से पूछता—"चौकस!" और उत्तर की परवाह किये बगैर छप्परवाली कोठरी में घुस जाता। मोटरों की फटी हुई गद्दियों के नारियलवाले ढेर में हाथ डाला। एक बोतल हाथ में आयी। गट, गट...एक दो तीन-चार दस ग्यारह बारह घूंट। और अपने दाँतों को चूसता हुआ वह अपनी सीट पर आ गया। सूबेदार घड़ी देखकर बोला—"बीस मिन्ट हैं।"

जैसे एकाएक सरनाम को ख्याल आया। उतर कर शिवराज के पास पहुँचा, पूछा—"चल रहे हो पंडित।"

"हाँ गाँव तक जाना है...।"

"आगे की सीट पर बैठ जाओ..." फिर सूबेदार से बोला, "एक ड्योढ़े का काटना।" कह कर खुद शिवराज की बाँह पकड़ कर लाया और खिड़की खोल कर अपने बराबर वाली सीट पर बैठा लिया।

मोटर ठीक समय पर छूट गयी। सरनाम की बाँहें शिथिल थीं आज। जब भी वह बैंजो बजाता है, तब बाद में ऐसा अहसास होता है; पर शिवराज की उपस्थिति जैसे उसे प्रकृतिस्थ किये थी। पूछा, "अरमसराय उतरोगे, जा क्यों रहे हो?"

"पिता जी की तबीयत खराब है, अरमसराय उतर कर नौ मील दक्खिन जाना है।" शिवराज ने कहा।

"और कौन-कौन है घर पर?" सरनाम ने फिर पूछा।

"बस पिता जी हैं, दो सौतेले भाई अलग रहते हैं।"

"और माँ?"

"नहीं हैं।"

शिवराज को उदास देख वह चुप हो गया। उसके चेहरे पर अभी रेखें फूट रही थीं। गालों पर रेशम से रोएँ थे। आँखों में शरारत भरी चपलता की चमक और ओठों पर निर्बोध होने की परछाईं। मोटर में पहली बार इस तरह बैठा था। अरमसराय में बाजार का दिन था। मवेशियों का बाजार। शिवराज को गाँव के एकाध लोग मिल गये और वह उतर कर चला गया।

"आना तो मिलना...वापस आओगे?" सरनाम ने पूछा।

"पता नहीं...अच्छा ड्राइवर साहब नमस्ते।" और वह बाजार की भीड़ में खो गया। सरनाम उसे जाते हुए देखता रहा।

क्लीनर ने हैंडिल मारा और लारी आगे बढ़ गयी।

अपने पिता की मृत्यु के बाद शिवराज एक टीन का बक्सा लेकर वापस आश्रम लौट आया था। आश्रम में वह बदले हुए व्यवहार का अनुभव कर रहा था। यह आश्रम अब उसके लिये अनाथालय-सा हो गया। स्वामी जी की पुचकार और स्नेह चुक गया। अब घर से दान-दक्षिणा जो नहीं आती! पहली बार पिता जी दो बोरी गेहूँ, एक बोरी गुड़ पहुँचा गये थे। एकाध कपड़े बनवा गये थे, लेकिन यह सब अब कहां? रात में बाहर चबूतरे पर लेटता तो आकाश का सूनापन देख कर रुलाई आती।

गाँव का खुला-खेला किशोर...अब आश्रम में दिन भर काम करते-करते थक जाता। रात में स्वामीजी के पैर दबाने की 'ड्यूटी' उसी की थी।

एक रोज वह बाजार में निकल गया। पर जायें भी कहाँ, कोई पहचानता भी नहीं। बहुत देर इधर-उधर घूमता-घामता, फिर मोटर अड्डे की तरफ चला गया...कुछ देर बैठकर लौट जायेगा। सरनाम सिंह को देखते ही उसे बल मिल गया। शतरंज की बिछी हुई बिसात पर सरनाम झुका हुआ था। उसने पास जाते हुए कहा, "डिराइवर साहब, नमस्ते।"

सरनाम उसे देखकर अवाक् रह गया। कहां तीन महीने पहले का शिवराज और कहाँ यह। "पिताजी नहीं रहे क्या?"

पीड़ा से भरी शिवराज की आँखें छलछला आयीं। सरनाम बिसात छोड़ कर उठ बैठा। शिवराज को लेकर छप्पर में चला गया। कुछ देर बाद एक बड़े ब्रह्मचारी के साथ शिवराज के दो-तीन साथी उसे खोजते हुए उधर पहुँच गये। मोटरवालों के साथ शिवराज को बैठा देख कर उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं।

"अच्छा यहाँ जमे हैं!" व्यंग्य से उन्होंने कहा, जिसमें सरनाम के लिए प्रकट अपमान का स्वर था। शिवराज एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गया। सरनाम ने ब्रह्मचारी जी को गहरी निगाहों से घूरा। तब तक ब्रह्मचारी जी फिर बोल पड़े—"यहाँ क्या हो रहा

है ?" क्षण भर पहले के भयातुर शिवराज में अपना ग्रामीण स्वातंत्र फूट पड़ा—"बैठे हैं।" सरनाम ने शान्ति की साँस ली और उसे साहस देने के लिए दृष्टि मिलायी।

"आश्रम चलो, स्वामीजी की आज्ञा है, जहाँ मिले पकड़ लाओ। खोजते-खोजते परेशान हो गये . . .।"

"मैं नहीं जाऊँगा आश्रम . . ."सुनकर सरनामसिंह हँस पड़ा। ब्रह्मचारी कुंठित हो गये और अपने चेलों को भेड़ों की तरह हाँकते हुए बोले—"चलो. . .तुम लोग चलो। नहीं जायगा न जाय, चल के स्वामीजी से . . .।" और न जाने क्या-क्या बड़बड़ाते हुए वे चले गये।

उस रोज शिवराज सरनाम के संग ही रहा। लारी पर उसके साथ गया और दूसरे दिन साथ ही आकर उसके घर रुक गया। छोटी सी बस्ती में बात फैल गयी—सरनामसिंह ड्राइवर ने आश्रम के एक लड़के को बरगला लिया। आश्रम छुड़वा दिया . . .।

"सरनामसिंह में यह गुन भी है ?"

"शराबी-कबाबियों में कौन से गुन नहीं होते। फाँस लिया उस छोकरे को। बताओ, आश्रम का लड़का . . .जिंदगी खराब करके छोड़ेगा।"

"वह रंगीले उसके पीछे बहुत दिनों से पड़ा था . . .।"

"जेबें कतरवायेगा . . बाद में गिरोह में शामिल कर लेगा।"

"सुना, लड़का भी लफंगा है।"

"नहीं नहीं, ब्राह्मन का बेटा है . . .।"

और तब से शिवराज वापस आश्रम नहीं गया। कुछ दिनों सरनाम के घर के बाहर वाले कमरे में रहा, फिर उसके घर और जीवन का अंग बन गया। पर धर्म मंडली की कोप-दृष्टि सरनाम पर टिक गयी। आध्यात्मिक जीवन जीने वाले धर्मपुरुषों ने बड़ा सांसारिक प्रचार किया, पर सरनाम अपने में मस्त था। जब कभी बात आती तो स्वामियों के कच्चे चिट्ठे खोलने लगता। इस प्रश्न को लेकर फक्कड़ों और पुजारियों में खासी अनबन और दुश्मनी हो गयी। यह दुश्मनी पिछले चार सालों से चली आ रही थी।

सुबह शिवराज की आँखें खुली तो देखा सरनाम सिंह उसी की चारपाई पर पड़ा है और उसका एक हाथ उसके सीने पर है। यह कोई नयी बात नहीं थी। उसे अभ्यास हो जाना चाहिए था। चार साल गुजर गये इसी वातावरण में रहते। पहले बेहद उलझन होती थी...सरनाम सिंह कहता—"तुम्हें देखकर मुझे अपनी जवानी याद आ जाती है...बस यही समझ लो जो तुम आज हो, वही मैं सोलह साल पहले था। यही तेज़ी, यही तेवर और यही मासूमियत। तुम्हें देख कर अपने उन दिनों को याद कर लेता हूँ।" ठंडी साँस खींचकर कहता—"कहाँ अब लौट के आयेंगे गुज़रे हुए दिन।" उसका हाथ अपने हाथों में लेकर बड़ी हसरत से नाखूनों को देखता, पोरों को दबाता, बाँह पर एक उंगली फेर-फेरकर रोओं को कोमलता से छूता, फिर जैसे स्वप्न टूटने की तरह एक दम चौंक जाता,"—"भाग जाओ मेरे सामने से।"

कभी सरनाम उसे बदहवास की तरह बांहों में दबोच लेता। उसके बालों में अपना मुंह गड़ाकर लम्बी सासें खींचता। ठोड़ी उठाकर कहता—"मेरी तरफ देखो।" असहाय पक्षी की तरह शिवराज ताकने लगता और उसका शरीर पकड़ से छूटने के लिये कसमसाता। अपने को ढीला करते हुए सरनाम सिंह कहता—"शिव! पिछले जन्म में तू मेरा कौन था? एक दफा अम्मा को ऐसे ही पकड़ लिया, साँस फूल आयी। गुस्से में एक तमाचा जड़ बैठीं। फिर प्यार करते-करते रो आयीं..." और वह इस तरह ख्यालों में डूबता, जैसे उसकी माँ उसे कहीं दिखायी पड़ रही हो।

शिवराज का एक क्षण पहले ग्लानि से भरा हुआ मन तरल हो आता। इसी तरह अपने सब बिछुड़े हुए साथी-संगियों की भाव-भंगिमाएँ, रूप, हाव-भाव और चेष्टायें वह जब तब शिवराज में देखा करता। कभी उसके बैठने में उसे अपने किसी साथी का साम्य दिखाई पड़ता, जिसे वह बहुत चाहता रहा था। या उसके पहन-ओढ़ लेने पर उसकी आँखों में अपने यौवन की तसवीर खिच जाती,

जिसे एक बार फिर महसूस करने के लिए वह शिवराज की दोनों बाहें पकड़कर अपने सामने घुमा लेता। अपनी प्रत्येक चेष्टा का औचित्य या उससे सम्बन्धित भावानुभति और उसकी पवित्रता का बोध वह शिवराज को अवश्य करा देता। इसके साथ ही सारी सुविधायें, शौक और फैशन की समस्त वस्तुएँ उसके लिए उपलब्ध रहतीं। शिवराज को फलानी चीज़ की जरूरत है, यह मालूम भर हो जाय, दूसरे दिन वह चीज़ सामने होती।

और शिवराज इसी सोच में पड़ा रह जाता कि आखिर यह स्नेह या प्यार कैसा होता है, इसमें दुर्गन्ध क्यों आती है? इसकी सीमा कहाँ तक है। किस बिन्दु के बाद यह सड़ने लगता है। वह कहाँ तक इसे स्वीकार करे, कौन सी सीमा बना ले। यह सब रोज बनकर टूट फूट जाता है।

धीरे से हाथ खिसकाकर वह उठा और भीतर कमरे में चला गया। अभी उजेला अच्छी तरह फैला नहीं था। तीन दिन पहले की बातें उसे कुरेदने लगीं। सुबह उठकर उसका पहला काम यही होता था...उन पत्रों को उलटना-पलटना जो हेम उसे भेजती थी। एक एक पंक्ति को बार-बार पढ़ना और समझना। किताबों के पीछे से उसने हेम का पत्र निकाला, विशेषतः वे लाइनें...।

परम पूज्यनीय,

नमस्कार।

परचा आप का शन्नो से मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपने मुझे बहुत ही लज्जित और दुखी किया, यह लिखकर कि मैं लोफर और आवारा हूँ। प्राणधन अगर आप लोफर होते तो आपके इतने पुरुष पीछे न फ़िरते, अपनी लड़कियों के रिस्ते को। लोफ़र आप जानते नहीं कौन हैं, हरी, ओम, दयानाथ आदि ही लोफ़र हैं। प्राणधन, अब से कभी न लिखना, वरना न जाने हेम को इस बात से कितना दुख पहुँचे। कल मैं और अम्मा मास्टर साहब के यहाँ गये थे। आप अपने कमरे में थे। मैंने देख लिया था पर आपने नहीं देखा

था। कल रात एक बड़ी वैसी बात हो गयी . . .हाथ की मोमबत्ती गुलदस्ते में लग गयी . . .और वह पतंगा अपना प्रचंड रूप धारण कर मेरी सब आशाओं पर पानी फेर गया, आपका वो गुलाबी रूमाल वहीं रखा था, वह भी जल गया। उसे बचाने के लिए मैं हाथ से आग बुझाने लगी। हाथ में लपटें लग गयीं, और धोती में आग लगने से बच गयी। पर रूमाल नहीं बचा, अचानक मेरे मुँह से निकला––

क्या मिल गया भगवान् मेरे दिल को दुखाके।
अरमानों की नगरी में मेरी आग लगाके . . .
मत पत्रों से दिल तोड़ ओ जीवन बनाने वाले
क्यों तोड़ते हो दिल को ओ प्रेम बढ़ाने वाले।
तू (आप) दिल से मिलाता दिल के तार चला चल
हेम के प्रेम के बन्धन में बना हार चला चल।

तुम्हारी दासी––हेम।

पैरों की आहट सुनकर शिवराज ने एकदम पर्चा मोड़ कर किताबों के पीछे डाल दिया। वह बंसिरी के यहाँ जाने के लिये कपड़े भी पहन चुका था, सरनाम ने देखा तो कुढ़ गया––"सुबह हुई नहीं कि तुम्हारा पैर निकला। दो-चार घंटा घर में भी बैठा करो . . . जानते नहीं हो किस तरह की औरत है।"

हमेशा की तरह वह चुपचाप सुनता रहा। सरनाम ने कुछ डाँटते हुए कहा––"दूध पीकर जाना और लारी छूटने से पहले मेरा खाना भिजवा देना।"

"मैं अभी होटल की तरफ नहीं जाऊँगा।" शिवराज बोला और अपने बालों में लहरें बनाने लगा, जो हेम को बहुत पसन्द थीं। तभी बाहर से पुकारने की आवाज़ आयी। पहचान कर सरनामसिंह ने भीतर बुला लिया। दोनों एक दूसरे को देखकर आँखों-आँखों में मुस्कराये, आने वाला मंगल था, बोला––"पुरी बँट गयीं, मंगलवार का सिद्ध, सोमवार को चाला. . ."

"कुरींवाला पासी है?"

"है, दो और, सब कुल ग्यारह" मंगल बोला।

"कित्ते लैसन्स हैं गांव में।"

"दो, जिनमें एक बाहर है।"

बातें सुनकर शिवराज अटक कर काम करने लगा। जाने की जल्दी नहीं रह गयी। तीसरे चौथे महीने इस तरह की बातों की भनक उसके कान में पड़ती थी और वह सब जानता था। उनकी भाषा समझता था, लेकिन हर बार उसके कान खड़े हो जाते, पता नहीं इस बार क्या हो जाय? कैसी बीते। सरनाम ने शिवराज को टरकाना चाहा—"अड्डे पर जाकर कह आओ, अभी आ रहा हूँ... वख़त का ख्याल है, गाड़ी भर लें।"

शिवराज अड्डे की ओर चला गया।

"हथियार करारे किराये पर मिले हैं। इत्ता रुपया कहाँ था? पेशगी की माँग थी, देना पड़ा।" मंगल ने कहा।

"सब हो जायेगा, इस बार चुनाव पर अपने लैसन्स लिये जायें, जो लैसन्स दिलवायेगा सो वोट पायेगा।" सरनाम ने आगे की बात कही।

"एक बात है ठाकुर", कानाफूसी के अन्दाज़ में मंगल ने सरनाम से कहा, "किसी तरह बनवारी धानुक को फँसवा दो, जब से एमेले हुआ है, दिमाग नहीं मिलता, तीन सौ पर दी है इस बार..."

"किराये के कितने हथियार हैं?"

"तीन, दो पुराने वालों के, एक दुनाली बनवारी धानुक की..."

"चलते वक्त वहीं छोड़ दो दुनाली, अपने आप फँस जायगा ससुरा...फिर देख लिया जायगा आगे, पता लगते ही रपट करेगा कि मेरी लैसन्स की बन्दूक चोरी गयी है, चक्कर में तो आ ही जायेगा। सरनाम की इस बात पर सर हिलाते हुए मंगल ने बात दूसरी तरफ मोड़ दी..."बोतलें नहीं हैं लौटने पर कम से कम दस का इन्तजाम करना।"

"ये साला चोरी बट्टे का काम करते गुस्सा आता है, उस दिन साली रास्ते में एक फूट गयी, बड़ी परेशानी उठानी पड़ी, हाँ, जरा नकशा बताओ..." सरनाम ने जल्दी की ।

मंगल ने समझाना शुरू किया—भेदिया उसी गाँव का सुनार है। साल पीछे मुसम्मात का पचास तोला सोना खुद उसने गलाया है, चाँदी की इन्तिहा नहीं, सामने-सामने मकान पक्का है, भीतर सब कच्चा है। दढ़ा फ़रलाँग भर की दूरी पर है, सीधी सड़क पर पहुँचाता है। दक्खिन ढाक का वन है। पश्चिम वस्ती है, पूरब में खेत और उत्तर तरफ मठिया। तीन तरफ से खुला है, घर में पाँच प्राणी हैं, तीन मर्द, दो बैयरबानी...पश्चिम वस्ती में दो लैसन्स हैं, एक गाँव के बाहर गया है, महीना-खाँड में आयेगा, एक से निपट लेंगे। सात गाँव बाद तहसील का थाना कचहरी है !"

"अच्छा ठीक है," सरनाम ने कहा पर उसका दिल अनायास किन्हीं पुराने खयालों में डूब गया...सबसे पहले डकैती के कचहरी के वे दिन याद आते, जब मुकदमा सेशन सुपुर्द हुआ था और बंसिरी बयान देने आया करती थी। सात आदमी गिरफ़्तार हो चुके थे, एक फ़रार था और सरनाम ने खुद अपने को जाकर अदालत के सामने पेश किया था। उसे यह कभी मंजूर न था कि वारंट से पकड़ा जाय और जेल में अपनी हड्डियाँ तुड़वाये। कबूल तो नहीं ही करना था। वह खुद कुछ दिनों फ़रार रहा था और मुकदमा शुरू होते ही उसने अपने को पेश किया था।

बंसिरी उसे देखती रह गयी थी। बाकी सब मुलजिमों की पाँच-पाँच, चार-चार जमानतें थीं, मामला टेढ़ा होता जा रहा था, और फिर घर की औरतों की शनाख्तें, जिससे कोई बचत नहीं। बंसिरी की आँखों में बदले की जो परछाईं थीं, उससे लगता था, कि कोई बचत नहीं।

थानेदार ने अदालत में शनाख्त करवाई—"इस आदमी को पहचानती हो ?" बंसिरी से पूछा गया था, और बंसिरी ने पैरों से

एक सड़क

सिर तक बड़ी गहरी नजरों से उसे ताका था, उसकी आँखें उसे भीतर तक भेद गयी थीं...वह अच्छी तरह पहचानती थी, जैसे रोम-रोम से परिचित हो, सरनाम का शरीर थरथरा गया था और कमर से पसीने की धारें छूट पड़ी थीं, बंसिरी ने उसे अच्छी तरह देखकर थानेदार की तरफ निःसंकोच भाव से देखा था। इसे पहचानने में भूलकर जाऊँगी...इसीने तो मेरी बाँह पकड़ी थी...भूत की तरह खूनी आँखों से मुझे देखा था और इसकी अँगुलियों की फ़ौलादी पकड़ से मेरी बाँह पर तीन नील पड़े थे...मेरी बाँह पर पड़े हुए तीनों नील आज भी इसकी निशानी हैं। पर इसकी आँखों की वह आग आज नहीं है, वे फड़कते हुए नथुने मुर्दा हैं...पर आदमी तो यही है। इसकी आवाज़ मेरे कानों में घुसी हुई है, जब ये अपने साथियों पर शेर की तरह गुर्राया था...इसे खूब पहचानती हूँ, अच्छी तरह जानती हूँ।

"इसे पहचानती हो," थानेदार ने सवाल दुहराया।

सरनाम ने माथे का पसीना पोंछने के बहाने मुँह ढक लिया था, कटघरे की बाड़ से टेक ले ली थी, और बंसिरी ने कहा—"मैं इसे नहीं पहचानती!"

सुनकर उसका शरीर खोखला हो गया था। प्रतिहिंसा की शक्ति और दुश्मन को सामने देखकर आने वाले हिम्मत के उबाल पर ठंडा छींटा पड़ गया था। उसके पैर और बुरी तरह से काँपे थे और वह बैठने के लिए लाचार हो गया था। खड़ा रहता तो गिर पड़ता।

बड़ी बुरी डकैती थी, न जाने कौन-सी सायत से गये थे, भेदिया साथ में था। खड्ढों में लारी चलाते-चलाते पसली-पसली हिल गयी थी। एक मुकाम किया था तेली के घर में। अँधेरिया रात, कब पानी बरस पड़े, इसका कोई ठिकाना नहीं। पखवारे पहले हथियार ठिये पर पहुँच गये थे। कुछ खेत में गड़े थे। शराब पी-पीकर कारतूसों की पेटियाँ डाल ली गयी थीं और आनन-फानन उस घर के सामने उतर पड़े थे। पहला फ़ायर सरनाम ने किया था लगा जैसे

किसी पहाड़ी घाटी में गोला दगा हो, गूंजता चला गया। देखते-देखते चार आदमी ऊपर छत पर थे। सरदार ऊँची छत पर खड़ा चारों तरफ़ से हिफ़ाज़त कर रहा था, तीन आदमी ऊपर से कूदे थे और दरवाजों के खुलते ही बाकी भीतर दाखिल हुए थे। ऊपर सरदार और नीचे खास दरवाज़े पर सरनाम। भीतर कुहराम मचा मुसम्मात का बड़ा बेटा एक लाठी की मार से चित्त हो गया था, पर वाह री औरत। अँगुलियाँ तोड़ दी गयीं, आग लगाने की धमकी दी, पर मुँह बंद। एक अक्षर नहीं। "मुंह में बन्दूक डाल दो... नंगा कर दो हरामज़ादी को।" सरदार चीखा था। पर टस से मस नहीं। ऊपर का माल हाथ आ गया था...तब एक ने बाँह मरोड़ दी थी पर उफ़ तक नहीं, बज्जर थी...बारह बरस के लड़के को उसकी आँखों के सामने गिरधारी ने सर तक उठाकर पक्के फ़र्श पर दे मारा, पर एक आह तक नहीं। सरदार ने कड़क कर कहा था—"आग लगाकर इसकी टाँगें भून दो, जब तक चाबियाँ न दे, मरने मत दो ससुरी को?"

और आग की लपटें देखकर डरी हुई हिरनी की तरह बंसिरी निकल कर आयी थी..."मैं देती हूँ चाबी। मैं बताती हूँ..." इतना कहने के बाद जैसे वह सहम गयी थी और जुबान पर ताले पड़ गये, आँखें फटी-फटी रह गयी थीं। बुरी तरह डर गयी थी। सरनाम एक फायर करके भीतर घुस आया था। आग की लपट में चमकता हुआ बंसिरी का कुन्दन-सा तन...रस से शराबोर...एक आँच लगते ही जैसे रंध्रों से सुगन्धित रस रिस आयेगा, चिकनी खाल भी पके टमाटर की तरह फूट जायेगी। "नम्बर तीन, तू बुढ़िया को तपा मैं इस लौंडिया की खबर लेता हूँ।" कहता हुआ गिरधारी बंसिरी की तरफ़ लपका था और उसकी छातियों पर हाथ डालकर वहशी तृप्ति का अनुभव करता हुआ अपने को कार्यरत प्रकट कर रहा था—"इस लौंडिया को सताओ, तब यह कबूलेगी...।" कहते हुए उसने उस अधेड़ औरत की तरफ़ देखा, पर गिरधारी की हिंस्र पाशविकता

में कहीं एक बेहद कमज़ोर इंसान उभर रहा था, जैसे किसी भौंकते हुए कुत्ते के सामने गोश्त का टुकड़ा आ गया हो। बंसिरी शिला की तरह खड़ी थी और गिरधारी उसे परेशान करने के बहाने उसके गाढ़े स्पर्श के लिए ललकता जा रहा था : बाल खींचकर उसने बंसिरी का मुँह ऊपर कर लिया था। "नायक !" सरनाम की आवाज़ गिरधारी के कानों में पड़ी, पर उस पर एक दूसरा ही खुमार था। एक भद्दी गाली देते हुए गिरधारी चीखा—"माल नहीं बताती तो इस लौंडिया को मोटर में डाल लो..."

सरनाम उछलकर पास पहुँचा था, बंसिरी बुरी तरह चीखी थी। उसकी बाँह को फ़ौलादी पंजों से जकड़ कर सरनाम ने अपनी ओर खींच लिया और गिरधारी पर बरस पड़ा था—"बेधर्मी नहीं होगी गिरधारी...जाओ सन्दूक सँभालो।" गिरधारी देखता रह गया और सरनाम बंसिरी को अपने पास बाहर की चौखट तक घसीट लाया और उसे एक कोने में डालकर मुहाने पर तैनात हो गया। उसे नहीं पता, वह कब अचेत हो गयी। क्योंकि पश्चिम बस्ती से शोर उमड़ता हुआ उधर ही आ रहा था...।

एकाएक एक धड़ाके के साथ ऊपर खड़े सरदार की लाश नीचे आ गिरी थी...सीने पर पड़ी कारतूसों की पेटी के सारे कारतूस फूटकर छाती में घुस गये थे...फ़ौज से छुट्टी आये गाँव के किसी सिपाही ने अचूक निशाना साधा था। गोली सीने पर लगी थी और सरदार का बदन छारछार हो गया था। बस्ती की तरफ से दो बन्दूकें लगातार फ़ायर कर रही थीं, और उस अँधेरे में सैकड़ों आदमियों का शोर नज़दीक आती रेलगाड़ी सा निरन्तर बढ़ता जा रहा था। आखिर संकट सामने आया। डकैतों ने बराबर गोलियाँ दागीं, पर बचाव नहीं था। सरदार की लाश ठिकाने लगानी थी। गाँव वालों ने तीन तरफ़ से चकिया सी डाल दी और चौथा रास्ता था तालाब का। हार कर बचे हुए लोग सरदार की लाश के साथ तालाब में कूद पड़े थे और गिरते-पड़ते किसी तरह भाग खड़े हुए थे।

भेदिया को वहीं गोली मार दी...दो बन्दूकों का नुक़सान हुआ और एक आदमी मारा गया...गिरधारी कुनज़र न डालता तो कुछ न होता। धरमशील के हौसले से काम होते हैं...चोर लफंगे नहीं हैं हम! उस दिन से गोल ढीला पड़ गया। सरनाम ने गिरधारी के साथ शिरकत करना बंद कर दिया और सरदार मारा जा चुका था।

दूसरे दिन डकैती की रपट हुई और पुलिस ने नाम रख रखकर वारंट जारी कर दिये। वह इधर-उधर बचता-छिपता रहा, फिर उसने खुद को अदालत के सुपुर्द कर दिया था। वकील की यही राय थी।

मुकदमा चला, बंसिरी रोज़ हाजिर होती, इजलास शुरू होते ही क़ैदी जेल से लाये जाते, बैठकर मिसकौट होती। गिरधारी कहता—"सब गुड़ गोबर कर दिया तूने सरनाम। गर्दन फँसी और कौड़ी हाथ न आयी। ...हज़ार रुपये की तो अकेली लौंडिया है...मटर की तरह भरी हुई!" इजलास से बाहर पेड़ों और वकीलों के तख्तों के आस-पास मजमा इकट्ठा रहता। सरनाम उसे रोज़ देखता, पर बंसिरी की आँखों में कोई भी ऐसी बात न दिखायी पड़ती, जिससे वह अपने लिए कुछ मतलब निकाले और वह सोचता—बंसिरी, तेरी मेहरबानी मेरे किस काम आयेगी? डकैती साबित हुई तो तेरे शनाख्त न करने पर भी सात साल की सज़ा नहीं बचती। तेरी यह मेहर किस लिए थी मुझ पर। रोज़ाना की एक दुश्मनी भरी मुलाकात, गिरधारी दाँत किटकिटा कर कहता—"शहर जाते हो तुम तो, सराय या धर्मशाले में टिकी होगी, कितनी देर लगती है..." कहते हुए वह चुटकी बजाता और उसके मुख के भाव कुछ इस तरह बदलते कि सरनाम का दिल कुढ़ने लगता, क्योंकि गिरधारी जानता है कि उस लड़की ने जान-बूझकर सरनाम की शनाख्त नहीं की, तब उसे चुप रहना चाहिये...उसे समझना चाहिए कि वह सरनाम और बंसिरी का अपना मामला है। न जाने क्यों बंसिरी सरनाम से आँख न मिलाकर उसके माथे पर पड़े हुए घाव के निशान

को ताकती थी, इसे सरनाम ने भी महसूस किया था। पर बात नहीं हुई। जो कुछ होती, वह अदालत में...बस।

फैसले वाले दिन डकैतों ने जब भरी हुई इजलास में नारे लगाये... "बोल सच्चे दरबार की जै" तो लोगों ने समझ लिया कि डकैती छूट गयी। बंसिरी के साथ वाले पैरवीकारों के मुंह पर लानत बरस रही थी, लेकिन बंसिरी स्वयं निरपेक्ष थी। वे लोग बैलगाड़ियों में बैठकर उसी दिन अपने गाँव लौट गये। एक नाटक खतम हो गया था। पर सरनाम के दिल में बंसिरी की अजीब सी अनुभूति थी—एक सतायी हुई दयावान नारी की। एक नासमझ लड़की की। एक हारे हुए दुश्मन की, एक जीते हुए साथी की। वह कुछ भी ठीक-ठीक न सोच पाता।

फिर एकाएक कई सालों का व्यवधान है। उसे लगता कि न जाने कितने ऐसे व्यवधान उसके जीवन में हैं, जिन्होंने उसकी जिन्दगी के रूप को निश्चित किया है। कहाँ से आ लगा वह। जिन्दगी के बनते हुए रूप को अस्वीकार करके वह भरी जवानी में फ़ौज में चला गया था, हिन्दुस्तान से बाहर जाना नहीं हुआ, पर कौन-सी ऐसी सड़क है, जिस पर उसकी मिलिटरी ट्रक के जूँ-जूँ करते हुए टायर नहीं गुजरे। आसाम से रावलपिंडी, रावलपिंडी से पूना, पूना से मद्रास और फिर इम्फाल। दो वर्ष की इस तूफ़ानी जिन्दगी के बाद वह यहाँ आया था, पर प्राइवेट मोटरों की ड्राइवरी म वह निःशंक तूफ़ानी रवानी कहाँ थी, वह उत्तेजना कहाँ थी...मौत से टक्कर लेने की ललकार कहाँ थी...और तब उसने अपने को इन लोगों के साथ पाया था...और इन लोगों के साथ में एकाएक बंसिरी को पाया था। उसे देखकर उसकी पशुता अचानक मर गयी थी, अद्भुत प्रभाव था उसमें।

और जब उसका चेहरा-मोहरा सरनाम के ख्यालों से उतर रहा था कि उसे एक भयानक धक्का लगा। दो साल बाद सोरों

के मेले में ताड़ी पीकर वह एक नौटंकी में घुस गया था। उसे शक हुआ—लैला की सखियों में बंसिरी थी। सीधी-सादी लड़की कूल्हे मटकाना सीख गयी थी। आँख मारती थी।... उइ दइया कह कर लजाती थी और खुले हुए गंदे मज़ाक करती थी। सरनाम ने गिलट का एक रुपया स्टेज पर फेंका था, पर नगाड़ों की किड़िम-धिन्न...किड़िम धिन्न में वह बेकार चला गया। उसे लगा, वह बंसिरी नहीं है। देखनेवालों के इशारों का जवाब वह अपना पार्ट करते-करते दे रही थी। उसकी निगाह हमेशा सरनाम पर बिछल जाती। पर उसका जी नहीं माना।

रात दो बजे जब नौटंकी खत्म हुई तो वह नटों के डेरों के इर्द-गिर्द घूमता रहा। सचमुच अब बंसिरी उसके लायक हुई है, तब तो वह इतनी पाक लगती थी कि अपने पर शरम आती थी। पाँच नटनियाँ दो तम्बुओं में थीं। नट उन्हीं की अगल-बगल थे। एक नट ने कुछ कहा था तो बंसिरी एक दम बिफर उठी थी—"जा जा...अपने तबेले में सो, इधर का रुख किया तो जान सलामत नहीं..."

"नयी है, ढर्रे पर आयेगी..." दूसरे ने पहले नट को तसल्ली से काम लेने की हिदायत दी थी और एक गंदा इशारा करता हुआ बड़े भद्दे ढंग से बैठ गया था। सरनाम लौट आया था। सुबह तक के तीन चार घंटे बड़ी पशोपेश में गुजरे। उजियारा होते ही वह उधर गया, पर नटों के डेरों में जगह नहीं हुई थी। एक रोज़ मेले में नौटंकी शुरू होने से पहले बंसिरी मिली थी। देखते ही बोली "डाका मारना है?" सरनाम हँस दिया। बोला—"अब तेरे यहाँ क्या रह गया?" और उसने बेहद गहरी नज़रों से बंसिरी को ताका था।

"तेरे लायक सब कुछ है। है दम?" बंसिरी ने कहा और खिलखिला पड़ी...पान से रंगे दाँत सरनाम को भा गये। कितनी मुँहफट हो गयी है। हया-शरम खोकर औरत बनी है अब।

"चल के देख, चलेगी।" सरनाम ने कहा, तब उसके साथ-वाली नटनी ने मनिहार से लड़ाई शुरू कर दी और बंसिरी उसमें उलझ गयी। सरनाम कुछ देर देखता रहा, शायद उधर से फ़ुर्सत पाकर वह फिर इधर मुँह मोड़े, पर वह झगड़ा निपटा कर हँसती-हँसती दूसरी दुकान की तरफ़ बढ़ गयी। सरनाम को खल गया। रात नौटंकी में वह फिर गया और सबसे आगे जाकर नगाड़े वालों के पास उसने जगह खोज ली। बंसिरी बंदरियों की तरह नाचती कूदती रही...और सरनाम का पौरुष उबाल खाकर सिराता रहा। पर वह जानता था, अब यह हाथ नहीं आने की। पर्दा गिरते-गिरते बंसिरी उससे कहती गयी—"बाहर रुके रहना।"

भीड़ छँटते ही वह आयी और उसे लेकर देवियों की मठिया की ओर हमलियों के नीचे चली गयी, यह रथों का बाज़ार था—रथ, लहडू, रब्बा...।

"कहाँ है आजकल...कुछ काम धन्धा?" बंसरी ने पूछा।

"वहीं हूँ...मोटर लेके आया था, मेले की दूकानें ढो रहा हूँ। कैसे आ गयीं यहाँ...?"

बंसिरी ने ऐसे देखा, जैसे सब तेरा किया तो है, और उसकी आँखें डबडबा आयीं। बोली—"बस आ गयी...तू निठल्ला है, समझता है सब इसी तरह रह लेते हैं। कितनी डकैतियाँ मारीं। हमारी नौटंकी के लकड़े ढोयेगा।" बंसिरी इस तरह बात कर रही थी, जैसे वह निपट नादान बच्चा हो। सरनाम को लगा, निकटता बता रही है। उसने कंधे पर हाथ रख लिया, बंसिरी कुछ नहीं बोली।

सरनाम उसे उत्तर वाले भूड़ मैदान की ओर ले आया, जहाँ लदाई के लिए और ट्रकों के साथ उसका ट्रक खड़ा था। उन दिनों रँगीले उसके साथ क्लीनर था। वह ताड़ी पिये, ट्रक के खुरदरे फ़र्श पर नंगे बदन लेटा था। सरनाम ने सीट की गद्दी निकाली और जहाँ ट्रक की परछाईं से अँधेरा और भी घनीभूत था, बिछाकर खुद बैठ गया, हाथ पकड़ कर उसे भी बैठा लिया!

"पौडर लाली लगाकर पटरों पर कूदते-कूदते हाड़ टूट जाते हैं, नगाड़े से कान के पर्दे फट जाते हैं. . .पर लैला बन के रहूँगी एक दिन।" बंसिरी बोली।

"लैला !" सरनाम ने हाथ दबा कर पूछा।

"हाँ, रियाज़ की बात है। सत्तार तो कहता था इसे ही स्टेज पर लैला बना कर उतारो, पर मास्टर नहीं माने. . ."

"कौन सत्तार ?"

"अरे, वही जो मजनू बनता है। असल में मास्टर की श्यामा से आशनाई है। जो वह कहती है वही होता है। सत्तार का मुँह नोच लिया कलमुँही ने. . .पर कित्ते दिन। पौडर लगाती है, तब भी लकीरें नहीं जातीं. . .लैला तो जवान थी।" बंसिरी ने कहा। उसकी आँखें अँधेरे में भी लौ की तरह चमक उठी थीं। गर्वीली गहरी साँस उसने खींची थी।

सरनाम ने उसे अधलेटा कर लिया था। मेले का शोर खामोश हो चुका था। टूरिंग सिनेमा का भोंपू बहुत पहले बंद हो गया था। सर्कस वालों का तम्बू पिचके गुब्बारे की तरह ढीला पड़कर जमीन पर लोट रहा था। दूर, जहाँ खास मेला था, वहाँ दुकानों के आगे पर्दे तन गये थे, जिनके पीछे से टिमटिमाती हुई लालटेनों का मटमैला प्रकाश छन रहा था। चरख चुप थे। मेला अफसरों के तम्बुओं की गैस की रोशनी में एकाध अरदली चिलमें फूँकते नजर आ रहे थे। दो-चार आदमी इधर-उधर थके-से आते-जाते, पर भूड़ मैदान में टिके हुए सारे क्लीनर और ड्राइवर नशे में बुत्त थे। सरनाम ने एक नजर चारों ओर डाली. . .उसके सामने फ़ौजी पड़ाव घूम गये। युद्ध से लौटे थके-हारे जवान और उनकी एकाकी बस्ती. . .किसी घाटी की कोख में या किसी नदी के किनारे खड़े हुए खेमे और उनमें सोते हुए थके, पर भूखे इन्सान। "गद्दी तो इतनी पतली है, तुझसे सीधी तरह बैठा भी नहीं जाता. . ." बंसिरी कह रही थी कि उसका

कंधा गद्दी के नीचे आ रहा था। बोली—"ये भी नहीं देखता, इधर काँटे हैं...खाल छिल गयी। हट, अरे हट..."।

और बंसिरी जब गयी तब उसके सचमुच एक कांटा ऐसा चुभ गया था, जो न उस अँधेरे में दीखता था और न टटोलकर बाहर ही खींचा जा सकता था। उसके थके हुए शरीर में कुछ ऐसी सनसनाहट भर गयी थी, जो उसे आपे से बाहर किये दे रही थी। इतनी टूटन, थकान और हारी हुई झनझनाहट। सरनाम ने उसे मरोड़ दिया था। मांस कसकता था...कितनी गहरी नींद आती है ऐसे में। चैन और भुलावे की नींद, बेफ़िक्री की नींद, मजबूरी की नींद।

"राउटी तक पहुँचा आऊँ...?" सरनाम ने पूछा था।

"चली जाऊँगी, तू सो।" उसने कहा और निश्चिन्त-सी उठकर चली गयी। किसी दूसरे मोटर के क्लीनर ने टोका तो गुर्राती हुई निकल गयी। सरनाम उसकी छाया को देखता रहा, एक मोटर इंजिन की बगल से मुड़कर वह ओझल हो गयी।

मेला उठते-उठते यह तै हुआ था कि जिस दिन नौटंकी यहाँ से उखड़ेगी, बंसिरी सरनाम के साथ चलेगी। नौटंकी के मालिक से पूछने या कुछ कहने की जरूरत नहीं। मेला उखड़ते ही सरनाम लकड़ी वालों की खेपें ढोने लगा। जिस दिन वह खाली मोटर लेकर आने वाला था, नहीं आया। रँगीले की थोड़ी-सी असावधानी के कारण ठर्रे की बोतलें पकड़ गयीं और दोनों बंद हो गये थे। जमानत देर से हुई, वह सीधा सोरों के मेले में पहुँचा। नौटंकी की वल्लियों के गहरे-गहरे गड्ढे अब भी उस जमीन पर मौजूद थे, दस-बीस फटे हुए बाँस पड़े थे।...बस, और कुछ नहीं। धरती की छाती में बने हुए वे गहरे गड्ढे वह देखता रहा, जिनके मुहानों पर मकड़ियों ने जाला भी पूर लिया था...जब तक सूरज तपेगा तब तक ये गड्ढे ऐसे ही बने रहेंगे। शायद तपन से दरक कर एक-आध पर्त उचट जाय...बरसात में पानी सोख कर धरती के ये घाव

पुर जाते हैं...भूमि नयी नवेली हो जाती है, जैसे यहाँ कुछ था ही नहीं, पर निशान मिट जाता है, तब तक के लिए, जब तक कि दुबारा फिर मेला नहीं जुड़ता।

बंसिरी की आहट के लिये उसके कान हमेशा खड़े रहते... जिले का कोई मेला उसने नहीं छोड़ा। हर नौटंकी और रास मंडली में उसने रातें गुजारीं, पर वह नहीं मिली। मास्टर की नौटंकी भी दिखायी पड़ी, मालूम हुआ, वह सत्तार के साथ किसी सर्कस में चली गयी थी। कुछ दिन पहले सर्कस के काफ़ी जानवर किसी बीमारी से मर गये, इसलिए सब तितिर-बितिर हो गया। अब पता नहीं कहाँ है। सरनाम माल ढोने वाली फारवर्डिंग कम्पनी से नौकरी छोड़कर सवारी वाली लारियों की कम्पनी में आ गया था। पूँछ की तरह रँगीले साथ था। मसखरा आदमी। सरनाम के रोब-दाब के कारण उसकी भी निभ जाती थी। अपने पेट भर को वह कमा ही लेता था।

और रँगीले।

बड़ा रँगा हुआ आदमी था। इस बस्ती में रँगीले का बचपन किसी ने नहीं देखा। चौड़ी काठी पर सिलबिल दिमाग। इस आदमी की शोहरत सबसे पहले टूरिंग सिनेमा के आस-पास फ़िल्मी गाने की किताबें बेचने वाले और पोस्टर उठाकर चलने वालों के बीच फैली थी। बात ही ऐसी थी। कोई खेल ऐसा न जाता, जिसे रँगीले न देखें। चाहे अछूत कन्या, कंगन या बंधन हो, चाहे हण्टरवाली या गुलबकावली। गाना गाने का नहीं, सुनने का शौक़ था। देविकारानी ही नहीं, लीला चिटनिस का ज़माना भी लद चुका था और वेस्ट टूरिंग टाकीज़ के पहले पर्दे पर उन दिनों सुरैया चमक रही थी। शहर में सुरैया की शोहरत के साथ-साथ रँगीले का नाम भी उजागर हुआ। अभी तक रँगीले बस्ती के हर आदमी के काम आता रहा था। अपने में मस्त होकर फक्कड़पन से जीता था,

न किसी से लड़ना न झगड़ना। आवारा कहे जानेवाले लोगों के साथ उठता-बैठता जरूर था, पर उनकी बदमाशियों से दूर, इसीलिए उसकी सबसे दोस्ती थी। दुश्मनी और रँगीले से, यह कोई सोच ही नहीं सकता था।

लेकिन एक रोज लोगों को यह जानकर ताज्जुब हुआ कि रँगीले किसी का जानी दुश्मन हो गया है और हर वक्त एक ही रट लगाये रहता है। "जिन्दगी में किसी से दुश्मनी नहीं की, पर ये देवानन्द जब तक जीता है और जब तक मैं जीऊँगा, तब तक यह दुश्मनी इसी जोर-शोर से चालू रहेगी। बेईमान!" यह गाली देकर वह जमीन पर बड़ी हिकारत से थूक देता था।

इस दुश्मनी का राज एक दिन खुला। रँगीले की जेब में सुरैया की तसवीर थी और जूते में फ़िल्म मास्टर देवानन्द की। क्योंकि रँगीले को फिल्मी गीतों की किताब बेंचनेवाले ने बताया था कि देवानन्द और सुरैया का प्रेम इस हद तक पहुँच गया है कि देवानन्द उससे शादी करने की सोच रहा है। यह खबर रँगीले को गोली की तरह लगी, उसके सपनों की रानी को कोई और इस निगाह से देखे। पर्दे पर सुरैया का गीत सुनकर जब उसके अगल-बगल बैठे लोग पैसे खनकाते तो उसकी त्योरियाँ चढ़ जातीं—जरा भी तमीज नहीं इन लोगों को, शोहदे हैं शोहदे।

रँगीले की अपनी अलग महफिल थी, सुबह वह मोटर अड्डे पर रहता, दोपहर में कचहरियों में दौड़ता और शाम को सराय के गलियारे में कलिया पराठे वालों की दुकान पर बैठता, क्योंकि उसके साथ वाले अधिकतर वहीं खाना खाते थे। मिशन स्कूल के पास लगा बाइस्कोप जब आवाज देता—"आइये, आइये. . .रामराज, जिसमें परेम अदीब, शोभना समरथ जैसे नामी सितारों ने काम किया है। खेल शुरू होने जा रहा है. . .भगवान् का दरसन कीजिए।" तब रँगीले अपने संगी-साथियों के साथ उठकर सिनेमा घर पर पहुँचता, आधी रात वहीं बीत जाती।

बड़ा लोकप्रिय था रँगीले। लोगों में भी और पुलिस महकमें में भी। वह अधिक पढ़ा-लिखा तो नहीं था, फिर भी हाजिर जवाबी में पढ़े-लिखों के कान कतरता था। सबसे बड़ी वजह थी उसका रूसूख। महकमा पुलिस का वह बँधा हुआ गवाह था। वैसे भी यह उसका पेशा था—पुलिस को किसी भी मामले में गवाह की जरूरत पड़ती तो रँगीले को हाजिर कर दिया जाता। क्या मजाल कि दूसरे पक्ष का वकील एक भी फालतू बात उसके मुँह से निकलवा ले या गलत कहलवा ले। दीवान जी से वह पूरा मामला समझकर यह जान लेता था कि उसकी गवाही किस पहलू के लिए है, फ़िर तो ऐसे बोलता, जैसे सारा वाकया उसकी नजरों के सामने हुआ हो।

किसी के घर चोरी हो जाय, किन्हीं दो में फ़ौजदारी हो जाय, और चश्मदीद गवाह की जरूरत पड़े तो रँगीले की माँग बढ़ जाती थी। जो पहले आ जाता, वह उसे रिजर्व कर लेता। चौथाई पैसा पेशगी, कचहरी तक का भाड़ा। आधा पैसा गवाही के वक्त और बाकी काम खतम होने पर। कभी-कभी इस काम के लिए वह दूसरी तहसीलों में जाता। खास ज़रूरत पड़ने पर जिला पार भी चला जाता और रँगीले सरकार को दुआ दिया करता था—बड़ी उमर हो इस सरकार की, हाकिम को टिकने नहीं देती। हाकिमों के तबादलों के साथ उसके रोज़गार में नयी जान आती थी, दीवानी कचहरी से लेकर लेबर आफ़िस तक के इजलास उसके घूमे हुए थे। कौन-सी ऐसी अदालत थी, जिसमें उसने गंगाजली उठाकर कसम न खायी हो।

वह कहा करता था—"मैं तो पैसे का गुलाम हूँ, और भाई, सबसे बड़ा अपनापा...आदमी आदमी के काम आता है। मुझसे किसी का काम निकल जाय, समझो सुरग की एक सीढ़ी चढ़ी। वह आ नहीं लेता...दुआ लेता हूँ, दुआ देता हूँ!

पुलिस वालों से जान-पहचान के कारण रँगीले निर्भय होकर घूमता था। कोई ऐसी चौकी नहीं, जिसके दीवान जी की किसी

मुसीबत में, रँगीले ने हाथ न बँटाया हो। सरनाम यह बात जानता था, इसीलिये उसने रँगीले का साथ पकड़ा था, लेकिन उसी पर एहसान करके।

उन दिनों एक जज बहुत दिनों टिक गया। रँगीले की साख बिगड़ गयी। जब फ़ैसले में जज ने लिखा कि रँगीले वल्द जोगनराम पेशेवर गवाह मालूम पड़ता है, क्योंकि मेरी इजलास में पेश हुए पिछले दो मुकदमों में यह गवाह बनकर हाज़िर हुआ। और उन्होंने जुबानी रँगीले से कहा था—"अगली बार तुम्हें गवाह की तरह न देखूँ। या अपना मुकदमा लड़ने आना या चोरी-चमारी के जुर्म में हाजिर होना।"

जब तक वह हाकिम रहा, किसी ने भी ँगीले को न पूछा। उन दिनों वह नौकरी भी छोड़ चुका था, इसलिये हाथ एकाएक तंग हो गया। पर फक्कड़ आदमी...उसके चेहरे पर शिकन दिखायी न दी। कुछ ऐसे काम करने लगा, जो कोई न कर पाये—जैसे महूक तोड़ना, कुयें में गिरी हुई डोल-बाल्टी निकाल देना, साँप पकड़ना आदि। बेकारी के समय में चौराहे वाले शिव मन्दिर के बाबा लोगों के साथ बैठा करता, गाँजा की दम लगाता और पिनक में पड़ा रहता। उसकी खामोशी से चौराहा, सराय और अड्डे सूने लगते थे।

इन दिनों की तीन-चार ही नहीं; सैकड़ों ऐसी बातें हैं जिन्हें रँगीले ने जन्म दिया। इस पतली और अँधेरी गलियों वाले शहर की सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं में उसका प्रभावशाली हाथ रहा है। यहाँ के लोग सचमुच उसके ऋणी हैं...जो लोग बाहर से पढ़-लिख कर आते, वे अपने आप यहाँ के जीवित स्रोत से कट जाते...पर इन बेपढ़े ज़िन्दा-दिल लोगों की पीढ़ियाँ कभी नहीं मिटीं; ऐसी पीढ़ियाँ, जो हमेशा अतीत की गरिमा और वर्तमान की आवश्यकता पर जीती रहीं। इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं देखा, देखना सीखा ही नहीं। शायद इसीलिए मानवता के इस खंड का

ग्राधा मु ह काला था, ग्राधा सफेद। टुच्चे काम करके भी बड़े काम करने का हौसला रखनेवाले। शाम को नृशंस की तरह गोद-गोद कर हत्या करने वाले ग्रौर सुवह किसी ग्रपरिचित की प्राण-रक्षा में स्वयं मर जाने वाले। रात में वेश्याग्रों की गलियों में दंगा-मारपीट करके सुबह गहरी निष्ठा से भरे हुए देवी मन्दिर पर शीश नवाने वाले ग्रद्‌भुत लोगों की वस्ती है यह। बड़ी-बड़ी नैतिकताग्रों को खंड-खंड कर छोटी-छोटी नैतिकताग्रों के लिए जागृत रहने वाले। ग्रौर रँगीले ! वह हमेशा बच्चों की तरह वर्तमान में जीता था, पश्चाताप ग्रौर परिताप से दूर।

उन दिनों रँगीले बड़े कष्ट में था। शिवमन्दिर के बावा लोगों से उसका झगड़ा हो गया था। मंडी में जाकर पल्लेदारी करना उसे मंजूर न था। उन दिनों वह किस तरह पैसे का जुगाड़ करता, यह किसी को पता न हो, ऐसी बात नही थी . . .।

सरनाम सिंह कुछ दिन पहले सवारियाँ ढोने वाली एक लारी पर ग्रा गया था। कुछ दिन पहले रँगीले भी उसके साथ क्लीनर रहा था, पर जव सरनाम ने दूसरी जगह नौकरी की तो वह ग्रपने पुराने धंधे में लगा, यानी वेकार हो गया।

उन दिनों लड़ाई वाले राशनिंग का ज़माना था। कारबार वुरी तरह चौपट हो चुके थे। कड़ी से कड़ी रीढ़ वाला भी झुक गया था। जिसे देखो, वह काम-धंधे ग्रौर रोज़ी की तलाश में दूसरे शहरों की ग्रोर भाग रहा था।

सरनाम को रँगीले की फ़िक्र भी थी, ग्राड़े वक्त काम ग्राने की वात थी। जोड़-तोड़ लगाकर उसने ग्रपनी लारी के क्लीनर को भगा दिया। रँगीले की तलाश में मठिया पर गया, पर वह नहीं मिला। सराय गया, वहाँ पता चला कि ग्रभी-ग्रभी उसका दिमाग़ चल गया था . . .ग्रपनी रमक में था। ग्रफ़सरों के घर की कुछ ग्रौरतें वापस डाक बँगले की तरफ़ जा रही थीं, वह बैठा उनकी चाल ढाल ग्रौर सिंगार-पटार पर फ़वतियाँ कसता रहा। फिर

सराय के कोने पर से कोरी का गधा खोल लाया और उसकी पूँछ में टूटा हुआ डोल बाँधकर उसने उन लोगों के पीछे दौड़ा दिया। हंगामा मच गया, ऊँची एड़ी की सैंडिल पहने एक अफ़सरानी के पैर में मोच आ गयी। अचानक गधे से बचने के लिये जब वे सँकरी सड़क पर घबरायी सी चीखीं-चिल्लाईं तो रँगीले वहशियों की तरह ताली पीट-पीट कर हँसा, एकाध गंदे मज़ाक उसने किये, और सिनेमा की तरफ़ भाग गया।

सरनाम उसकी हालत समझ रहा था। जब वह उसके साथ था तब उसने उसे पास से देखा था...औरों की तरह वह भी बुरी तरह भूखा था। हर तरफ से भूखा...मन से, तन से जेब से। इसी लिये औरतों के प्रति उसके व्यवहार में यह तिक्तता थी, अमीरों के प्रति घृणा थी और अपने पुरखों के प्रति क्रोध। बनी-ठनी औरत देखते ही उसका दिमाग़ कीली पर से उतर जाता था, कोई ऐसी हरकत कर बैठता, जिससे उसके मन को जंगली तृप्ति मिलती, उन्हें परेशानी में पड़ा देखकर वह दांत निकाल कर ठट्ठा लगाता। जानवरों के जोड़ों को परेशान करता। बिल्लियाँ और कबूतर आदि पकड़कर उनके अंगों का निरीक्षण करता। जाते हुए साँड़ को किसी गाय पर हुलकार देता और चौराहे पर जब कभी गाँव की बेड़नियाँ आ जातीं तो वह बीच-बजार दिन भर हुरदंगा मचाता... यह ज़ाहिर करता कि वह पिये हुए है, उन्हें छेड़ता, मज़ाक करता। तमाखू लाकर खिलाता, पानी पिलाता और उनके साथ ऐसा घुल मिल जाता, जैसे उसी मंडली का सदस्य हो। रात-रात-भर सूनी गलियाँ उसके कदमों की आहट और बेसुरे गानों से गूँजती रहतीं। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं था, जिससे वस्ती के लोग उससे डरते... वस्ती वालों के लिये वह विषहीन साँप था।

इन्हीं दिनों शहर में एक अनोखे संघर्ष ने जन्म लिया।

सन् बयालीस में कुछ खास तरह के लोग यहाँ आये थे। उनकी वजह से शहर के नौजवानों में तरह-तरह की बातें फैली थी... कई निशान चालू हुए थे.. तिरंगा पहले भी था, पर उसने इस बार जोर पकड़ा था और हँसिया-हथौड़े वालों से उसकी आये दिन हाथा-पाई होती रहती थी। बस्ती में नारे गूँजते रहते। तरह-तरह की टोपियाँ दिखाई पड़तीं, स्कूलों के लड़के गोल बाँधकर सड़क और गलियों का चक्कर लगाते रहते। गांधी बाबा की जै के नारे लगते। इन दिनों बड़ी सरगरमी थी। सरेशाम दुकानें बंद हो जातीं...।

पनवाड़ी रमेसुर इस सरगर्मी का कारण समझता था—"विक्टोरिया महरानी के मंतरी लोग बेईमान हो गये, गांधी बाबा ने ऐलान करवाया है कि राज अब हमको देके देखो, हम चलायेंगे।"

रँगीले, जो बातें सुन रहा था, बोला, "सुभाषचन्दर बोस का इन्तजार करो...उन्हीं के साथ दिल्ली जायेंगे, उन्हें कोई रोक नहीं सकता। बड़े महात्मा हैं, अंगरेज फौज लेके लड़ने गये तो अन्तर्ध्यान हो गये और मय अपनी फौज-फाटे के आसाम में उतरे। उनके लिये कोई मुश्किल नहीं, हो सकता है कल यहाँ दिखायी पड़ें... बराबर दिल्ली की तरफ़ बढ़ रहे हैं।"

"बंगाले का जादू उनकी मुट्ठी में है। जो भी उनका सामना करने जाता है, वह बकरी-बकरा हो के लौटता है..." जगनू ने मार्के की बात बतायी, फिर धीरे से कहा, "आज रात सब लोग जमा हो रहे हैं, तैयार होने का हुकुम मिलेगा, पता नहीं कब दिल्ली चलना पड़े....।"

और रात की मीटिंग के इकरारनामों के मातहत सब से अधिक काम रँगीले ने किया था। दिन-दहाड़े उसने डाकघर में दस-पन्द्रह साथियों के साथ आग लगा दी। डाकघर के बाबू खड़े तमाशा देखते

रहे। उन दिनों रँगीले "नेता जी" हो गये थे। एक ही नारा उसकी जुबान पर था..."अपने देश में अपना राज!"

जगह-जगह जाकर उसने आग भड़कायी थी। कचहरी पर छापा मारने वालों के दल में शामिल हुआ था। स्कूलों में हड़ताल करवाने के लिए वह आगे-आगे झण्डा लेकर गया था। खिड़कियों और दरवाजों पर पत्थर बरसाये। लड़कों को जबरदस्ती बाहर खींच लाया....यहाँ तक कि अकेले उसने एक आन्दोलन खड़ा कर लिया, पर किसी पार्टी ने उसे अपने साथ नहीं लिया, पता नहीं कल क्या कर बैठे? धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ हो रही थीं, पर रँगीले, सिंह की तरह बस्ती की गलियों में घूमता। जगह-जगह सुभाष बोस के किस्से सुनाता... उन्होंने "पताल लोक से यात्रा की और जब धरती पर फिर परगट हुए, तब बलोची का बाना धारण किया, जब वरदान पाय गये, तब अब देश लौटे हैं। भारतमाता की आजादी का वरदान माँगा, तब से बराबर आकासबानी होय रही है—नेता जी भारत माता को आजाद करने के वास्ते पूरब से आय रहे हैं, सूरज देवता के साथ, सात घोड़े के रथ पै। वो रथ दिल्ली जायके रुकेगा, वहीं राजतिलक होगा उनका, जैसे दशरथ जी ने रामजी को बनवास दिया था वैसे ही गांधी जी ने सुभाष जी को देस निकाला दिया है, बड़ा-बड़ा करतब है इसमें। अवतारी पुरुष हैं नेता जी...।"

इस तरह के अवतारों पर रँगीले हमेशा से विश्वास करता आया था। वह दिन बीत गये, और आज सरनाम, रँगीले, रमेसुर, लछमन और बाबा सराय में कलिया पराठे वाले की दुकान पर बैठे थे...वहाँ गर्मागर्म खबर थी—"भगवान किसन ने कलंकी अवतार लिया है...दीन-दुखियों की आरत पुकार सुनकर आखिर भगवान जी को अवतार लेना पड़ा।"

"कहाँ की बात है? कौन कहता था?"

"भगीरथ जोतिषी से पूछो, बगैर नक्षत्र इतनी बड़ी आत्मा जन्म लेगी?"

"अवतारी के जनम पर नछत्तर सब बदल जाते हैं . . .।"

"इसमें कोई धोखा है।"

"पापी तो वैसे भी उनके दर्शन नहीं कर पायेगा. . .भगवान सामने होंगे; पर उसकी दिरिष्टी पर पर्दा पड़ जायगा। दर्शन नहीं होने पायेगा।"

"हाँ हाँ, सो तो है ही।"

"पर खबर कौन लाया है।"

"खबर कौन लायेगा, अघौरी बाबा को सपना दिया है, छन, पल दिवस सब बतलाया है सपने में, स्थान तक . . .नदी पर देवी मदिर के पास वाली कोठी के ग्रहाते में। बात फैलाने की जरूरत नहीं है . . .।"

बात फैलाने का यही गुरु मंत्र है। गली-गली, बस्ती-बस्ती, गाँव-गाँव कलंकी ग्रवतार की खबर हवा की तरह फैल गयी। महकमा पुलिस के कान खड़े हुए। रँगीले ने सारी जान-पहचान एक तरफ़ कुनियाते हुए ऐलान किया—"ग्रगर कोतवाल ग्रौर कलेक्टर की सी. ग्राई. डी. ने धर्म के मामले में टाँग ग्रड़ाई, तो तोड़ दी जायगी. . .।"

"कोतवाल ग्रौर कलक्टर दोनों मुसलमान हैं। इसीलिये विघन डालना चाहते ह . . .।" भभूत लगाये लछमन बाबा ने ग्रपनी जटाग्रों पर हाथ फेरते हुए कहा।

कलंकी ग्रवतार के लिये धर्मप्राण जनता सजग हो गयी। ग्राखिर किसन जी की यही लीला भूमि रही है, मथुरा वृन्दावन न सही, ग्रब की इस तरफ़ किरपा हुई है। ज़िले की पाँचों तहसीलों के साधु वैरागी जटने लगे। धर्मशाला में उनका सतसंग हुग्रा। देवियों के पास वाली कोठी के ग्रहाते के चारों ग्रोर धुज ग्रौर पताकायें फहराने लगीं। यज्ञ होने लगा। बस्ती के पंडितों ने ग्राँखें टेढ़ी कीं। कृष्णावतार हो ग्रौर बाहर के ब्राह्मण उसका जस लूटें ! ग्रजीब शंका ग्रौर रहस्य व्याप्त हो गया। दुलारे पंडित ने कहा—"बकवास है . . .।"

तभी शिवराज बाजा-मास्टर के साथ उधर आ निकला। वह समझा रहा था—"मास्टर जी, उससे मिल सकना इतना आसान नहीं। रामलीला, नुमायश पर हो भी जाता था...सनेमा में मार-काट की फ़िल्में आ रही हैं, कोई भक्ती की आये तो उसका मिलना हो।"

"कलंकी अवतार देखने नहीं जाना है? वहीं मिल के बात कर लो। दो-तीन दिन भीड़-भाड़ जरूर होगी...।" मास्टर ने सुझाया।

कोठी के मैदान में रोज भंडारे हो रहे थे। जनता तिथि से पहले पहुँचने लगी। बाबा लोगों ने जगह घेर रखी थी। एक-एक फरलाँग तक आदमी बाहर रह जाता। आखिर वह दिन भी आया। शाम होते-होते हज़ारों की भीड़ झुक पड़ी...लाठियां और चिमटे ले-ले कर बाबा लोग इन्तजाम कर रहे थे—आज केवल माताओं के वास्ते।

रँगीले उलझ पड़ा—"इतना इन्तजाम हमने किया और परथम दरसन का लाभ तक नहीं।"

"आज केवल माताओं के वास्ते...।" एक ही उत्तर वहाँ था। भीड़ झुकती जा रही थी, पर साधुओं के चिमटों ने पुलिस की संगीन से ज्यादा असर दिखाया। "तो पिता लोग कल दरसन पायेंगे।" रँगीले ने कह ही दिया। हँसी का फ़व्वारा फूट पड़ा और एक चिमटा उसकी पीठ पर पड़ा। गलती महसूस करने का दिखावा करते हुए उसने जीभ दाँतों से काट ली।

नारियाँ भीतर जा रही थीं। कृष्ण जी गोपियों के साथ एक पलंग पर बैठे थे, हाथ में बाँसुरी और सर पर मोर मुकुट। अद्भुत रूप था, औरतें देखतीं और निहाल हो जातीं। फूल-मालाओं और भेंट से इर्द-गिर्द की जगह भर गयी। कृष्ण जी की बगल में गोपियों के साथ बलराम भी थे। बाहर खड़ी जनता घोर जयनाद कर रही थी। नारियाँ दर्शन के लिए टूटी पड़ती थीं। सहसा कृष्ण जी ने

चंवर डुलाने वाली गोपी की बाँह पकड़ ली—"मातु...मातु... माता।" भगवान बालकरूप धारण कर रहे थे। पलंग से उतरकर घुटनों के बल चलने लगे...।" मातु...मातु... "उनके पैरों की पैंजनियाँ खुनुकने लगीं...झुन झुन झून झुन...और बालकृष्ण ने एक युवती की गोद में सिर घुमा दिया..."मातु .." दोनों हाथों से स्तन पकड़कर बछड़े की तरह मुँह रगड़ने लगे उन पर...।

"दया हुई...भगवान् की माँ ! जनम सफल हुआ...बाल कृष्ण ने स्तन पान किया। धन्य हो माई। धन्न...धन्न..." आवाजें गूंज उठीं। युवती मदहोश होकर अधलेटी हो गयी, बालकृष्ण उसे छोड़कर घुटनों चलने लगे..."मातु...मातु।" औरतों की श्रद्धा उमड़ पड़ी...।

"बड़ी भागवान है छतरपुर वाले की बिटिया, साच्छात भगवान् जनम लेंगे उसकी कोख से...। कौशल्या माई का दर्जा मिल गया, इसे कहते हैं ऊपर वाले की किरपा ! " कोई कह रही थी।

कृष्ण जी की बांसुरी कूक उठी। गोपियाँ भाव विभोर हो गयीं। बीच में कृष्ण चारों ओर गोपियाँ। नारियों ने गोल बाँध कर कृष्ण धुन शुरू कर दी थी—"देवकी का लाला देखो, गोपियन के संग रास खेले !

गोपियन संग रास खेले...।"

कृष्ण जी बाँह पकड़-पकड़ कर दो-तीन को पकड़ लाये, पैरों की थाप के साथ बाँसुरी की लय और चटकती तालियों की ताल। कृष्ण उन्मत्त हो गये थे, जगह कुजगह छेड़ देते, चिबुक पकड़कर मुँह उठा देते। निर्लिप्त होकर बांसुरी बजाने लगते। जिसने एक दरस पाया, जनम सफल हुआ। बाहर हरिकीर्तन हो रहा था। मर्दों की भीड़ छँट रही थी, पर औरतें चींटी की तरह वहीं चिपकी थीं। बड़ी रात तक रासलीला होती रही, तब कहीं बलराम ने कहा —"गोपीनाथ शयन कीजिए...।"

छतरपुर वाले की बिटिया रम्मी अपनी लाज किसी से नहीं कह पायी। साथ वाला भी कोई नहीं। सीधी हेम के पास पहुँची, "हेमा दिदिया . . .।" कहते-कहते उसने हेम के दोनों हाथ अपने वक्ष पर कस कर दबा लिये। रम्मी बौराई हुई थी। "नशा चढ़ा हेमा। तन की सुध-बुध न रही आँखें मुँद गयीं ऐसा तेज था। बेहोशी सी होने लगी।"

"ऐसी भला क्या बात थी?" हेम ने पूछा तो रम्मी ने पिछली रात कृष्ण के स्तनपान वाली घटना बतला दी। हेम का रोआँ-रोआँ भभर आया . . .रोमांच सा हो आया। दौड़ी दौड़ी वह गयी और भगवान के सिंहासन के सामने माथा टेक दिया। प्रकृतस्थ होकर बोली—"रम्मी, तुझमें तेज समा गया है। न जाने कैसा लगने लगा था अभी। सचमुच बेहोशी छायी जा रही थी।"

मन में बड़ा अरमान लेकर हेम शाम को दरस-परस के लिए गयी, माँ साथ में थी, फिर भी वह आगे बढ़ गयी। लेकिन आज आदमियों की अटूट भीड़ थी। उस भीड़ में जब हेम ने शिवराज को अपने ठीक पीछे देखा तो पसीना छूट गया। पर ऐसा मौका कहीं बार-बार मिलता है? बाबा लोगों के डेरों के पीछे नदी की दलान में वे उतर गये। अँधेरा गहरा था। दोनों इतनी निकटता पाकर खो गये। हेम आँखें झुकाये खड़ी थी और शिवराज थर-थर काँप रहा था। बाजा मास्टर की हिदायतें उसके दिमाग़ में गूँज रही थीं, पर हिम्मत नहीं पड़ती थी। कैसे छुए . . .किधर से, कहां से . . कैसे? ऊपर सड़क पर गैस चमकी, रोशनी से बचने के लिये वह और नीचे खिसका, तब एकाएक उसका हाथ हेम की बाँह पर था . . .अपने सामने करके आँखों में झाँकना—उसने हेम की दोनों बाहें पकड़ कर उसे सामने कर लिया . . . प्यार से कुछ पूछना। वह धीरे से बुदबुदाया—"हेम!" और हेम की क्वाँरी साँसों की महक ने भाप की तरह उसके अस्तित्व को पूरी तरह से ढक लिया . . .

साँस कड़ी हो गयी और दोनों के बोल सूखे गले में अटक गये । हेम के पैर उखड़ गये . . . ।

शरीर तनी ताँत की तरह झन्ना रहा था....रम्मी के अनुभव से कहीं गहरा अनुभव ! अपने को सँभालते-सँभालते वह शिवराज के पैरों में बैठ गयी । उसके चरणों पर उसकी हथेलियाँ थी....तपती हथेलियों का स्पर्श ! ऊपर सड़क पर फिर गैस की रोशनी चमकी । शिवराज ने तब पहला खत उसके हाथों में थमा दिया था, जिसमें एक तस्वीर लिपटी थी ।

सचमुच वह कितना ऋणी था बाजामास्टर का ! हेम और शिवराज को पास ले आने का सारा श्रेय उसे ही था । बाजामास्टर ने जीत की हुँकार भर कर कहा, 'देखा, पहले मंत्र में चरनों में आ गयी! अब आगे अपना समझो-बूझो ! दो-दिन गोता लगा जाओ, देखो तब कैसे मछली की तरह तड़पती है....!' शिवराज को यह राय पसंद नहीं आयी थी । दो दिन ! कैसे रहेगा वह, बिना हेम को देखे ! पर बाजामास्टर की बात उसे माननी पड़ी थी । वही तो सबसे बड़ा सहायक था, और फिर जिस स्कूल में वह संगीत मास्टर था, उसी के पिछवाड़े हेम का मकान पड़ता था । छिपकर आया-गया या चक्कर काटे तो जरूर पकड़ जायगा ।

उन दिनों बाजामास्टर संगीत वाले गुरुजी कहलाते थे, आज से चार साल पहले । अच्छी तरह दिन गुज़र रहे थे, पर कन्या विद्यालय के अधिकारियों ने एक सूरदास खोज लिये, बूढ़े और ज़रूरतमंद । बाजामास्टर की नौकरी छुटी तो सबसे अधिक सदमा शिवराज को हुआ था । इस बीच बाजामास्टर ने न जाने कहाँ-कहाँ की खाक छानी ; आखिर करम ने फिर यहीं ला पटका । इस बार वह रामलीला मंडली के साथ आये तो शिवराज ने इन्हें बहुत बदला हुआ पाया— और बाजामास्टर ने शिवराज को । चार साल पहले का शिवराज कितना बदल गया था ! वह आदमी हो रहा था । बाँहों के रोएँ

काले पड़ रहे थे, अंग-अंग में कड़ापन आ रहा था। बाजा-मास्टर जैसे उतार पर था। अब एक ही धुन थी—"एक नाटक मंडली!"

'ऐसी नाटक मण्डली शिवराज, जो अपने पैरों पर खड़ी हो सके! सब देख चुका हूँ....फाहिशाओं के चौवारों पर भी गाया-बजाया....नरक में रहा, पर जब भी हारमोनियम की कुंजियों पर अँगुलियाँ पड़ीं, सब भूल-बिसर गया। इसकी आवाज़ न जाने कहाँ उठा ले जाती है शिवराज!' बड़ी गहराई से बाजामास्टर कहता।

'नाटक मण्डली बन सकती है।' शिवराज सहारा देता।

'बन नहीं सकती बनाना है....बनाऊँगा! उस नरक से एक यही वरदान या शाप लाया हूँ शिवराज! लीला कहती थी—मैं ठीक हो जाऊँ तब हम दोनों मिलकर चला लेंगे नाटक कम्पनी! वह जानती थी कि मेरा यह सपना है....पर तब वह लाचार हो चुकी थी! कहने को तो लीला वेश्या थी पर मेरे हारमोनियम को दोनों बाँहों में समेट कर, माथा टिका देती थी....उसके बाल ढक लेते थे कुँजियों को! लीला कहती थी—'तुम इतना अच्छा बजाते हो फिर भी कोई नहीं आता!' और मैं उसकी हताश प्रशंसा का जवाब देता था—'तुम इतना अच्छा गाती हो, फिर भी कोई नहीं आता!' तब वह दूर अँधेरे आकाश को ताकती हुई कहती थी—'यह गाना-बजाना ढोंग है सब, सीधा व्यौपार करना चाहिए....तभी उसने सोचा था, हम नाटक कम्पनी भी तो खोल सकते ह ....रूखा-सूखा खा लूँगी पर यह व्यौपार नहीं करूँगी, और कौन-सा धंधा है हमारे लिए.... लेकिन वह हार गयी—एक तरफ़ भूख और मौत खड़ी थी, दूसरी तरफ ज़िन्दगी और ख़ुशहाली! उसने तन का सौदा करके ज़िन्दगी को ही चुनना मंजूर किया! क्या बुरा किया उसने शिवराज! कितनी बड़ी सौगात होती है, ज़िन्दगी! पर ख़ुशहाली की जगह भयंकर रोग ने उसे डस लिया! अपनी भरी जवानीं के आखिरी-खोखली दिनों में वह मुझसे भजन सुना करती थी....मीरा और

सूरदास के भजन ! घबरा कर पूछा करती थी—मैंने ग़लती तो नहीं की, जिन्दा रहने के लिए किया था यह सब ! तुम तो गवाह हो ! कम्पनी बन सकती तो मैं सिर्फ़ तुम्हारी होकर रहती....बोलो, मुझ पर विश्वास करते हो....बोलो, चुप क्यों हो....? कौड़ी की तरह निकली हुए उसकी आँखें मुझे हमेशा घूरती हैं । बार-बार कहती हैं—कम्पनी बन सकती तो मैं सिर्फ़.... कहते-कहते बाजामास्टर चुप हो गया—'सिर्फ़ एक नाटक कम्पनी !' फिर एक गहरी साँस खींच कर उसने बताया—'इसीलिए इस रामलीला मण्डली में चला आया....वह सूरदास और मीरा के भजन सुनते-सुनते मरी थी । मेरी मीरा मर गयी थी शिवराज ! मेरी मीरा विष नहीं झेल पायी.... हँसते-हँसते उसने विष का प्याला पिया था । मन नहीं लगता शिवराज !' मीरा....लीला....

बाजामास्टर के बारे में जब भी शिवराज सोचता है तो उसके सामने वही दृश्य सबसे पहले नाच जाता है—हेम उसके पैरों पर हथेलियाँ रखे है....और बाजामास्टर नदी के पुल पर उसका इंतजार कर रहे हैं....

कलंकी अवतार के समय बंसिरी तीसरी बार दिखायी पड़ी । सरनाम देख कर अवाक् रह गया । कितनी निखर आयी थी बंसिरी ! गजरों से लदी, बनी-ठनी बंसिरी । उसकी चाल में मद था । सरनाम ने देखा, आँखें मिलीं, लेकिन वह आँखें चुरा गयी—उसकी काजल रची आँखें सरनाम के दिल में उतरती चली गयीं । कृष्ण की गोपियों में सबसे ज्यादा जँच रहीं थी, चँवर डुलाते समय उसकी गोरी बाँह मुड़ती तो जैसे रोशनी बिखरती थी । एक क्षण के लिए सरनाम का माथा झुक गया, उसे लगा वह बंसिरी नहीं....और अगर है भी तो अब बेहद दूर चली गयी....मोबी-आइल, ठर्रा और पेट्रोल में बसी उसकी काया उस चन्दन की सुगन्ध को सह नहीं पायी ।

वंसिरी कितनी दुर्लभ ....दुर्लभ और दूर हो गयी। उसकी आँखों में कोई परछाईं तक नहीं उभरी।

चँवर रखकर उसने कृष्णजी का पीताम्बर सँभाला, उनकी ओर देख कर धीरे से मुस्कराई....सरनाम भीड़ चीरकर और आगे वढ़ा। भ्रम तो नहीं, पर नहीं, उसकी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं! कई वार उसने कोशिश की; पर वंसिरी ने नहीं निहारा। उसके लिए खड़ा रह सकना संभव नहीं था। जिस पुरानी मोटर पर वह रँगीले, छदामी और भगीरथ जोतिषी के साथ आया था, उसी पर अकेला लौट गया!

पलटन में धर्म गुरु शिक्षा दिया करते थे—कभी मन में नहीं समायी, पर आज सहसा उसे लगा कि वह कहाँ पहुँच गया है। डकैतियाँ, दड़ा, नाजायज शराब और शिवराज....पड़ा-पड़ा वह यही सोचता रहा—शिवराज से कहेगा, तू अपने घर जा अब, बस बहुत हो लिया। युद्ध के बाद जब वह लौटा था तब ज़िन्दगी बिताने की तस्वीर उसके सामने थी, पर सब बदल गया, सब बिगड़ गया। आज उसे लगा कि बंसिरी औरत होकर भी कितनी ऊँची उठ गयी, और वह!

तभी गालियाँ देता हुआ रँगीले भीतर दाखिल हुआ। सरनाम चुपचाप लेटा था, 'क्यों कुछ तबीयत खराब है! हम मर गये पदते-पदते, कहके चले आते....'

'सवारियाँ तो थीं!'

'पैसा तो नहीं था, हुआ क्या? वह जोतिषी जी अड्डे पर खड़े रो रहे हैं तुम्हारे नाम को....'

'सुबह देखा जायगा!'

'मतलब की बात है! उन्हें इस सब में गोल-माल नज़र आ आ रहा है! शक हमें भी है!'

बिजली की तरह एक विचार सरनाम के दिमाग़ में कौंध गया—वंसिरी और गोपी! यह बात दिमाग में आयी ही नहीं थी। वह तो देखता रह गया था।

अगर-धूम की सुगंध में बसी वंसिरी ! वृन्दावन की ग्वालिन वंसिरी....कुछ सोच ही नहीं सका । चन्दन-सा रंग और पवित्र हँसी, काजल लगी कजरारी आँखें, मन में बसे कृष्ण की सहचरी.... जैसे सपना हो और उसी सपने की हालत में वह घर लौट आया था । आज अपने दोष पहचाने थे । रँगीले की बात से उसकी आँखें चमकीं—घर में ताला मार कर अड्डे पहुँचा । भगीरथ जोतिषी, छदामी, बारेलाल, लपकना, ताहिर और लड्डुन मिसकौट में शामिल थे । बड़ी रात तक रहस्यमय ढंग से बातें चलती रहीं—सर्वदानन्द आश्रम वालों से वह अभी जूझा था, बोला, 'यह सब ढोंग है ! हिम्मत करो तो अभी कलई खोल दी जाय सालों की....' कहते-कहते उसके सामने बंसिरी थी, वह उसे नंगा कर देगा, उन काजल लगी आँखों में मिर्च की बुकनी छिड़क देगा, कृष्ण की पीठ पर हण्टर चटकाता हुआ लायेगा और बंसिरी को....

'कल छतरपुर वाले की लड़किनी के दूध पकड़ लिये ! अम्मा-अम्मा कह के....' छदामी ने बताया ।

'रासलीला रचाई थी, चट-औचट हाथ डालता था औरतों पर....'

'यह सब घोर अन्याय है धर्म के नाम पर....' जोतिषीजी ने लूकी लगाई ।

'आसरम वाले महन्तों का हाथ है इसमें....' सरनाम को पानी पर चढ़ाने के लिए ताहिर ने जोड़ा । पर सरनाम के सामने सिर्फ़ वंसिरी थी....उसकी बाँह मरोड़ दी है....सिल्क की अँगिया फाड़-कर उसके शरीर को नाखून से चींथ डाला है, उसका बदन नीला पड़ गया है....निस्सहाय वंसिरी उसके सामने टूटी हुई खड़ी है ! केवल विध्वंस....

और मैदान के बाहर इमली के पेड़ पर सात आदमी छुपे हैं.... जनता वापस जा चुकी है । कृष्ण मण्डली सामान बटोर रही है । आज भगवान् अन्तर्ध्यान हो रहे हैं । वह करेगा अन्तर्ध्यान ! अँधेरी रात

एक सड़क

और इमली के झाड़ में छुपे सातों लोग। तने की ओट तेल पिलाई लाठियाँ टिकी हैं, वह देख रहा है—बलराम बंसिरी से ठठोली कर रहा है, एकदम बोला, 'कूद पड़ो....'

सबर किसे था। गद्-गद् सातों जमीन पर थे। इमली थर्रायी और कृष्ण मण्डली के गोपों पर लाठियाँ बरस पड़ी। बाबा लोग चिमटा लेकर कूद पड़े, चार-पाँच बाबा खड़े दूर शान्ति-शान्ति पुकारते रहे—सब तितर-बितर हो गया। चढ़ौती लूट ली गयी। पुलिस के आने तक कृष्ण-मण्डली के लोग भाग खड़े हुए थे। गोपियां नदारद थीं—सिर्फ बलराम जमीन पर पड़े कराह रहे थे। पुलिस आने की बात सुनकर सरनाम और बाकी साथी जेल वाली सड़क से घूम कर शहर पहुँच गये। बाद में बलराम की शनाख्त हुई—निकट के एक गाँव का कोरी था, जो बहुत दिन पहले किसी रास मण्डली के साथ गाँव छोड़ गया था।

बंसिरी का कोई पता सरनाम को नहीं लगा। शायद उसे धोखा ही हुआ हो! अगर वह होती तो मिलती ज़रूर—कम से कम उससे पूछती कि सोरों वाले मेले में कहाँ रह गया था? बात देके क्यों नहीं आया? कितना इन्तज़ार किया मैंने....वह ज़रूर मिलती....अवश्य ही उसे धोखा हुआ है।

इस घटना का शोर बस्ती में मच गया, लकिन कोई गिरफ़्तारी नहीं हुई। कृष्ण-मण्डली के कुछ बाबा लोगों ने आश्रम वाले महन्तों से मिलकर मामले को आगे बढ़ाने की कोशिश की; पर सफल नहीं हुए। बलराम अस्पताल से छूट कर यहीं बस गये। सरनाम के पास उठना-बैठना हो गया उनका...

...चाय वाली दुकान पर शतरंज की बिसात बिछी थी। रँगीले मठिया पर से गाँजे का दम लगाकर आया था—'बम, बम... क्या लपट उठी कि चिलम मशाल हो गयी...'

शतरंज में मशगूल खिलाड़ियों ने नहीं सुना। तब तक बगल वाली दुकान के सामने खंजड़ी खनक उटी—एक बगल से झोला

लटकाये, सिर पर गंजी की सफेद टोपी और माथे पर तिलक—घुटनों तक धोती और बदन पर एक फतुई...इन्हें लोग अच्छी तरह नहीं पहचानते। दो-एक बार यहाँ दिखायी पड़े थे। सुना, बड़े भक्त आदमी हैं। साधु समागम में विश्वास रखते हैं और 'सतसंग माला', 'नारी प्रबोधिनी माला' के लेखक-कवि हैं। जिले भर में होने वाली सभी सतियों पर इनके कवित्त मशहूर हैं। सरसुती जिह्वा पर बिराजती हैं। खंजड़ी पर ज़ोर की थाप देकर कवि-जी ने झोले से किताबें बाहर निकालीं, उन्हें वायें हाथ में पकड़ा और दाहिने हाथ को कान पर रख कर अलाप लिया—आँ...आँ...

सतियाँ ही इस देश की, हैं अनमोल विभूति !
जिनकी शक्ति न आज तक, मिली किसी को कूति !

फिर राधेश्याम की रामायणी चौपाई की लय में उन्होंने 'अगला हवाल' प्रस्तुत किया—

हमने यह कवित्व खुद जाकर ले सच्चा हाल बनाई है !
आशा है इसमें झूठ बात रुपए में एक न पाई है !!

सज्जनो ! गौंद, ज़िला मैनपुरी की सत्ती सान्तीदेवी के सतीत्व का सच्चा चमत्कार ! यह घटना बिल्कुल सच्ची है, इसका किस्सा खुद गौंद जाकर दरियाफ़्त किया गया है और शेष समाचार सरस्वती जी की कृपा से खुद आँखों देखा जैसा लिखा गया है...तो हे धर्म के मानने वालो ! बिल्कुल सरल भाषा में, अरु राधेश्यामी तर्ज में सुनिए—

फर्रुखाबाद अरु मैनपुरी, यू० पी० के हैं मशहूर जिले !
या यों कहिए तम्बाकू के अच्छे सच्चे मजबूत किले !
है इन्हीं जिलों की यह घटना जो आगे मित्र सुनाता हूँ...

चारों तरफ भीड़ जुटने लगी थी और कविजी कान पर हाथ रखे अलाप ले-लेकर एक-एक छन्द गा रहे थे—

'सत्ती के पद पाने हित बीए की कुछ न जरूरत है !
हो अगर पढ़ी तो हर्ज नहीं, यह और भी अच्छी सूरत है !!'

एक सड़क

जुटी हुई भीड़ के सर कविजी की बात के अनुमोदन में हिल गये, 'सच्ची बात है, सत्ती के लिए बिल्कुल ज़रूरी नाई !"

कविजी का हौसला बढ़ आया था, पूरे गले से वे सती शान्तीदेवी की गाथा सुना रहे थे। गले की नस फूल आयी थीं। भीड़ दत्तचित्त सती कथा सुन रही थी...

'सत्ती जी की जै...गौंद की सत्ती की जै ऽऽऽ...' भीड़ ने अंत में गेंदा कवि की आज्ञा का पालन किया और उनका आखिरी बयान सुनने के लिए उत्सुक-से ताकने लगी। गेंदा कवि ने छपी हुई दुअन्निया पुस्तक को जनता की आँखों के सामने करते हुए गाया—

'असली की दरकार है, अगर आपको मित्र !
तो पुस्तक पर देख लो 'गेंदाजी' का चित्र !!
कीमत दो आने ! सिरफ एक दुअन्नी ! और भाइयो !
पढ़कर लो जनम सुधार सत्ती की सत्य कहानी !
सत्ती की सत्य कहानी, सतियों की मान बढ़ानी !!

प्यारी माताओं और बहनों के वास्ते ले जाइए। उन्हें पढ़ाइए ! दस-बीस कितावें हाथों-हाथ बिक गयीं। तर्ज बहर में प्रचार गान का बड़ा असर पड़ता है। पैसे जमा करके गेंदाकवि ने जेब में डाले और एक बार फिर लोगों की ओर ताका—अब बिक्री का कोई डौल नहीं, कंधे की डोरी में झूलती खंजड़ी उनके हाथों में थी और अँगुलियाँ तर्ज बहर का राग छेड़ रही थीं। खंजड़ी में पड़ी झुनकियाँ धीरे-धीरे बजती जा रही थीं। चौराहे पर आकर गेंदा कवि खंजड़ी बजाना रोक कर किसी के इन्तजार में खड़े हो गये। रँगीले अपनी पिनक में था। बाकी लोग भी फिर शतरंज में उलझ गये थे। एक ने गेंदाकवि को देखते हुए मोहरा हाथ में पकड़ कर कहा—'आज सराय में जशन होगा कोई ?'

'कैसे !' दूसरे ने मोहरा चलने का इशारा करते हुए पूछा।

'गेंदाकवि आये हैं, सराय में ही ठहरे हैं आकर, कोई चमूना... माल, बेटा...माल !'

तब तक अड्डे से सरनाम आया, वह शतरंज वालों के पास ठिठक गया। उधर से मगन मिस्त्री रुककर गेंदा कवि के पास अटक गया। सरनाम को कुछ खला, मगन ने उसे देखा था, जैराम तक नहीं! रँगीले दुकान की पटिया पर अधलेटा एक मुर्गी की टाँगों के बीच आँखें गड़ाए न जाने क्या खोज रहा था। 'मर जायगा साला एक दिन!' सरनाम बोला। सुनकर एक ने जोड़ा, 'पगला जायेगा, जरा गर्मी और बढ़ने दो....' अपनी हरकत पर कसे हुए नूक्के सुनकर रँगीले बत्तीसों दाँत निकाल कर हँस पड़ा।

मगन मिस्त्री ने गेंदा कवि से केवल दो-तीन क्षण कुछ फुसफुसा कर बात की और कुछ रहस्य भरा इशारा करके इधर चला आया। सरनाम को जैराम किया और बैठ गया। बैठते ही एक ने पूछा—'कोई डौल है?' मगन मिस्त्री मुस्करा दिया! सरनाम ने बात भाँप ली, रँगीले की ओर देखा और मन ही मन कुछ तै किया।

'देखा है!' सरनाम ने मगन मिस्त्री से पूछा।

'हूँ....आज ही आयी है!' मगन ने कहा।

'कहाँ की है?' इसका उत्तर मगन ने हाथ के इशारे से दिया—पता नहीं।

'जाओगे....' उत्तर में मगन ने अनिच्छा जताई। पर सरनाम जानता था, वह जायेगा जरूर! मगन मिस्त्री भला चूक जाय! मगन ने कहा, 'बड़ा घड़ियाल व्यौपारी है! पंजाब तक व्यौपार करता है, पचासों निकाल दीं..'

'शकल से नहीं लगता!' सरनाम ने कहा।

'एक से एक अव्वल लाता है....किस्मत जबर है, इन्दर का अवतार है द.विगज! हरवक्त दरबार भरा रहता है। कहता था—मेनका है मेनका!'

शाम को सरनाम जब सराय पहुँचा तो मगन मिस्त्री कुएँ वाली कोठरियों की ओर जाता नजर आया।

गेंदाकवि भी बाहर निकल आये थे। सरनामसिंह का व्यक्तित्व देखकर उन्होंने प्रंशसाभरी नज़रों और मीठी जुबान से राम-राम किया। बात करने की सुविधा के लिए वे दोनों पजावे की ओर चले गये। गेंदाकवि उसे समझा रहे थे—खतरा नहीं है सिंघजी, मन से आयी है। इसमें व्यौपार की बात नहीं, असलियत है। किसी भी तरह का झगड़ा-टंटा नहीं, मन माफिक रखिए....सुन्दरापन के लिए, क्या पूछना, अहा हा....देख भर लें सिंघजी। । किस्मत की बात है जो इस तरह आ गयी! ठाकुर-जमींदार के ही लायक है सिंघजी, लेकिन सबसे ऊपर पैसे का जोर। मैं खुद ऐरे-गैरे के हाथ नहीं देना चाहता, आप ही अपने चरनीं में डाल लें....उद्धार हो जाय बिचारी का!' कहते-कहते गेंदाकवि भावुक हो आये थे। जैसे उनके भीतर दया का समुद्र उमड़ आया हो और उनकी परोपकारी वृत्तियाँ कुछ उपयोगी कर सकने के लिए अकुला रही हों।

'देखा जायगा!' कहकर सरनाम चुप-चाप चला आया। और वह सोच रहा था—यह एक तरीका हो सकता है....रंगीले जनम भर के लिए गुलाम हो जायगा। पुलिस वालों की तरफ से भी कुछ राहत मिलेगी और फिर साथ में एक आदमी बढ़ता है! मान तो फौरन जायगा, भूखा घूमता है....सुनकर बौरा जायगा....सर के बल चल कर आया करेगा! पर एक तस्वीर—एक अधूरा महल उसके सामने उभरता है! स्वयं उसका महल जो बनते-बनते रह गया! अच्छा ही हुआ। ये सब झंझट उसके बस के नहीं। फ़कतदम सब से अच्छा। न मौत का डर न होनी-अनहोनी का! और फिर जहाँ पैसा डाला, वहाँ सब है। कमी क्या है? बँध के रह सकना उसके स्वभाव में भी नहीं; यही सब करना होता तो माँ-बाप के जीते जी करता। उनकी आँखें भी सिरा जातीं....छोटा-सा एक घर बनाता, वहीं गाँव में रहता और जीवन काट लेता! पर जो नहीं होना था, उसके लिए चिन्ता या अफसोस कैसा? उसे किसी ने रोका तो नहीं था, आज भी वह चाहे तो सब कुछ हो सकता है। उसका अपना घर!

गोबर लिपी दीवारें और घर की शीतल छाँह ! हर वक्त किसी की दो आँखों का पहरा—कम-से-कम एक बार तो जी लेता ऐसे ! एक बार....दोषी भी कौन है, स्वयं उसके सिवा ! ये लड़की....नहीं, बिलकुल नहीं....न जाने किस-किसके साथ....और फिर बाँहों में बल होगा तो खुद भगा लायगा ! ऐसे नहीं....दूसरे दिन सराय के बड़े फाटक के नीचे सब शौक़ीन जमा हुए थे । इस सराय में न जाने कितने काम होते हैं ! मगनमिस्त्री धारीदार पैजामा और तंजेब का बेलबूटेदार कुरता पहने था....आज ही बाल कटवाए थे....कलाई में बेले का हार और आँखों में दारू की मस्ती । संगमलाल तमाखू वाले, जो अपने को गुप्ता कहते थे—आँखों में सुर्मा डाले, सैन्चुरी की लक़दक़ धोती पहने, खस के इतर से महक रहे थे । दीनानाथ तारकशी वाले इन लोगों की तड़क-भड़क देखकर तारों से छिली हुई अपनी अँगुलियाँ देख रहे थे और अमजद अली किसी पैसे वाले की पैरवी करने के लिए बारी-बारी से एक-एक का मुँह ताक रहे थे। क्योंकि मुसलमान होने के कारण उनका सिप्पा नहीं बैठ सकता ।

रंगीले सरनामसिंह के साथ एक ओर उकड़ूं बैठा था । आखिर सब शौक़ीन एक दूसरे को अपनी दरियादिली दिखाते हुए पराठे वाले की बेंचों पर जम गये....गेंदाकवि खुद इधर आयेंगे, यही कहलवाया है । मगनमिस्त्री ने कच्ची शराब की एक बोतल सामने रखी और दौर चल पड़ा....खाने-पीने के दौर के बाद सभी शौकीन अँधेरा होते ही सराय में दाख़िल हुए । कोठरी में एक दिया जल रहा था.... कोने में पड़े तखत पर दिये की मटमैली रोशनी में एक स्त्रीकाया गठरी बनी बैठी थी । सिसकियों से उसकी पीठ कुछ हिल रही थी । खुले पैरों की अँगुलियों में बिछुए थे, पैर महावर से रंगे थ, एक लड़ी की पायलें पैरों में पड़ी थीं—देखते ही रंगीले ने सरनाम के कानों में फुसफुसा कर कहा—'ये झंझट का सौदा लगता है, ब्याहता है शायद....'

'अक़ल नहीं है-तो चुप रहा कर !' सरनाम ने प्यार से डाँटा। गेंदाकवि ने उन दोनों की ओर देखा और बोलने लगे, 'बिटिया देख ! इन लोगों से सरम कैसी....सब अपने हैं ! मुसीबत में काम आने वाले कहाँ मिलते हैं ! ये सब हमारे दुर्दिन के साथी हैं....' कहते-कहते उन्होंने एक नज़र सभी पर कुछ इस तरह डाली जैसे वे लोग परोपकार करने आये हों और सबसे ऊपर वह खुद इसी से प्रेरित होकर इतनी मुसीबत उठा रहे हों। फिर बोले, 'एक नज़र उठा कर देख बिटिया, ये सब अपने हैं....मगनलाल मिस्त्री, दीनानाथ, ठाकुर साहब....पराया कौन है ? देख तो एक बार....'

सरनाम ने एक गहरी नजर उस लड़की पर डाली, जिसकी सिसकियाँ अभी तक बंद नहीं हुई थीं। उसका मन उचट गया—पत्थर-सा दिल पसीज आया....मन हुआ रंगीले से कहे, 'उठ चल....' पर रंगीले की आँखें उधर ही गड़ी हुई थीं....उनमें भूख अपना मुँह फाड़े बैठी थी !

मोटर इंजन की तरह उसका माथा जलने लगा। सब बकवास है ! यह सब क्या है ? जैसे कसाई बकरी खरीद रहे हों ! लेकिन और होगा भी क्या इसके साथ ! बिक्री न हुई तो यहीं किसी कोठरी में पेशा करेगी....या दर-दर भटकना....जब तक जवानी है, तब तक—और उसके बाद ? कल्पना मात्र से उसे रोमांच हो आया। आखिर किसी के साथ तो पड़ेगी....शायद मगन के ही, जेब से वही कर्रा है....पिछली औरत की तरह उसका भी हाल करेगा। ताड़ी पी-पीकर पीटेगा और किसी दिन ये भी पेट में बच्चा लिये ज़हर खाकर या फाँसी लगाकर जान दे देगी....

तब तक भीतर से सब लोग बाहर आ गये। रंगीले बाँह पकड़कर सरनाम को दूर अँधेरे में खींच ले गया और कुछ भी कहने की बजाय सिसक-सिसक कर रोने लगा। सरनाम भौंचक्का रह गया....सचमुच रंगीले रो रहा था, उसकी आँखों से लगातार बूंदें टपकती जा रही थीं। सरनाम ने हाथ पकड़कर पूछा तो केवल इतना कह पाया—'चलो दद्दा....बाहर चलो....' सरनाम के लिए कुछ भी

समझ सकना मुश्किल हो रहा था, और रंगीले सिसकता जा रहा था, उसके सामने थी वह लड़की....

गेंदाकवि उसकी टाँगों में हाथ डालकर घुसा हुआ मुंह जबरदस्ती ऊपर उठा रहा है....पर बार-बार वह चेहरा घुटनों में धँस जाता है। हलकी सी एक झलक उन लोगों को दिखायी पड़ी—गोरा रंग....सिसकियाँ....'इनसे सरम कैसी!' गेंदाकवि के शब्द, पुचकारना-मनाना। 'नखरे दिखा रही है....जरा मेरे साथ अकेला छोड़ दो....दो मिनट में हरा कर दूं....' मगन मिस्त्री की बात उसके कानों में चुभ रही है, फिर थोड़ी ज़बरदस्ती....सर से पल्ला सरक गया है....पसीने में पल्ला भीगे हुए, बगल और माथे पर बहकर आयी हुई खून की तरह सिन्दूर की लकीर....इधर-उधर चिपके हुए रोएं और भौंहों की नोक से टपकती हुई पसीने की बूंदें आँखों से बेबसी में ढरके हुए आँसू....पपड़ाए ओंठ और भरा हुआ चेहरा....दोनों हाथों की अँगुलियों से अपना मुख छिपा लिया है! वे अँगुलियाँ काँतर की तरह चेहरे पर चिपक गयी हैं। गेंदाकवि नहीं खिसका पाया....जैसे अँगुलियों की उन छड़ों के पार वह सुरक्षित हो....उसका मुर्दा रूप सुरक्षित हो....और जलती हुई मोमबत्ती की तरह उन आँखों से बूँदें अब भी टपक रही हैं....अब भी....अभी भी....

और रंगीले रोए जा रहा है! सरनाम खड़ा असमंजस से देख रहा था! 'बोलता क्यों नहीं, कुछ बोलेगा कि यूँ ही रोता जायेगा!' सरनाम ने झिड़कते हुए कहा। 'मुझे वह नहीं चाहिए....मैं नहीं चाहता, बस वापस चलो घर!' रंगीले बोला।

'आदमी की तरह रह, इस बखत देवताई सूझ रही है....शाम को फिर पागलों की तरह ताक-झाँक करेगा!' सरनाम ने बड़प्पन के लहजे में कहा और बाहर लौट आया।

कोठरी के उढ़के हुए दरवाज़े के पीछे खड़ी छाया अपने भाग्य का फैसला सुन रही थी! दिये की रोशनी की लकीरें जो दरवाज़े की सधों से फूट कर बाहर ज़मीन पर पड़ रही थीं, वे भी उसकी

छाया ने सोख ली थीं, ठीक उसी तरह जैसे अभी तक अपन पथ की प्रकाश वह स्वयं ढकती आयी है ! इस क्षण वह अपने को न जाने कितना हताश महसूस कर रही थी । उसकी सारी चेतना उन लोगों की बातों की ओर उन्मूख थी....

'अच्छा लो ! पाँच सौ पर तोड़ होता है ?' सरनाम ने कहा । गेंदाकवि भी सरनाम के लिए ज्यादा ढुरक रहे थे ।

चार सौ के नोट रंगीले के हाथ में देते हुए सरनाम ने कहा था, 'चुका रुपये रंगीले !' फिर गेंदाकवि से बोला था, 'एक सौ कम हैं, जब तक ये रुपया पूरा नहीं चुका देता तब तक तू रख इसे !' कहकर सरनाम उठ खड़ा हुआ था । गेंदाकवि ने फ़ुरसत की साँस लेते हुए कहा—ठीक है ठाकुर साहब ! इसमें कोई हर्ज नहीं !' फिर कोठरी की ओर देखकर उसने बड़े हर्ष से पुकारा था, 'बंसिरी बिटिया किस्मत खुल गयी तेरी....'

बंसिरी का नाम सुनकर सरनाम के पैर काठ हो गये । बंसिरी, कौन बंसिरी ! और दूसरे ही क्षण उसे लगा कि उसने क्या कर डाला है ? और कौन होगी उसके सिवा ! लेकिन न जाने क्यों मन खट्टा हो आया । नौटंकी की बंसिरी और सत्तार । और फिर कृष्ण-मण्डली के साथ बलराम से आँखें लड़ाती हुई....जो उसे पहचान कर भी नहीं पहचानना चाहती थी । और फिर गेंदाकवि के साथ रही हुई बंसिरी....न जाने कितने गेंदा, बलराम और सत्तार ! और उस दिन का वह घमण्ड ! और उसका मन प्रतिहिंसा की वहशी खुशी से भर गया ! एक अभिमानभरी तृप्ति और एक अनूठा संतोष पर मन में कहीं कैसक भी थी । बंसिरी से भला हार-जीत क्या ? और फिर औरत से !

लेकिन चलते-चलते उसे लग रहा था जैसे भीतर सब खाली हो, खोखला....एक खाली मकान जैसा....ऐसा मकान, जिसमें रहने वाला सुधि का पाहुन एकाएक चला गया हो और साँय-साँय करती

गरम हवा के थपेड़ों से घर के दरवाज़े और खिड़कियों के पल्ल भटा-भट दीवार से टकरा रहे हों....

और रंगीले पाँच सौ रुपये का कर्ज़दार होकर वंसिरी को ले आया ! मोटर अड्डे के सामने वाले कच्चे मकान में उसने अपनी गृहस्थी जमाई । सरनाम हमेशा यही सोचता रहता....उसने अच्छा किया, नहीं....नहीं, उसने बुरा किया ....शायद कुछ भी नहीं किया, न अच्छा न बुरा !

पर वड़ी मुश्किल से आयी थी वंसिरी....रंगीले की बात जानकर उसने गेंदाकवि से इनकार कर दिया था, कहा था—'मैं जहर खाऊँगी ....मैं भाग जाऊँगी ! रात में गला घोंट दूँगी तेरा !' पर गेंदाकवि पुराने घाघ थे; सब जानते थे कि कितनी देर का उफ़ान है....डेढ़ दिन कोठरी बंद किये यूंहीं पड़ी घुटती रही, उस गर्मी और अँधेरे में।

और उसी रात पुलिस के एक दीवान जी सराय में आये थे; तब उसने जाना था कि वह क्या है, उसकी क्या हस्ती है ! इससे अच्छा है उस सरनाम की हिकारत सह लेना....उसके सामने नीची निगाह करके जीवन भर एक-सहारे जी लेना—कभी कुछ कह तो पायेगी....और कर भी क्या सकती है ?

दीवान जी ने शहर की पूरी मिल्कियत उसे सौंपते हुए बड़ी इज्ज़त से कहा—'वेखटके रहिए शहर में, जब तक ज़ाहिद दीवान है तब तक परवंदा पर नहीं मार सकता ! मौज क़ीजिए...वक्त ज़रूरत याद फर्माइएगा ।' पर उसके मुँह से आती हुई दारू की महक ने उसकी साँस रोक दी थी और सचमुच मुर्दा बंसिरी ने वह रात.... तव एक विचार कौंधा था—अपने को बड़ा अफलातून समझता है सरनाम ! वेईमान....दगावाज़....इज्ज़त से खेल गया कमीना ? कैसे-कैसे सब्ज़बाग दिखाये थे मेले में, कितना इन्तज़ार किया था उसने, दग़ा देकर भागा था....और आज पहचान कर भी....जब सबने कोठरी में देखा था तव उसने भी देखा होगा....तव भी दूसरे के हाथ विकवा कर ज़लील करना चाहता था । खुद पैसे लगाये

थे....और....'जब तक रुपया पूरा नहीं चुका देता तब तक तू रख इसे !' इज्ज़त का ठेकेदार बन गया था ! औरत पुकारता था, जैसे उसकी कभी कुछ भी नहीं रही ! ....औरत ! अभी जानता नहीं औरत कितनी खूँख्वार होती है ? अब औरत बन के ही रहेगी और एक दिन देखेगी उसे....बतायेगी उसे कि वह सिर्फ़ औरत है !

और उस रात उसने ज़ाहिद दीवान को खुश कर लिया था—कुछ इस तरह उसे घेरने की कोशिश की थी कि वह हाथ में रहे.... चलते-चलते जब उसने कहा था, 'बेखटके रहिए शहर में'!' तब उसकी छाती भविष्य में होने वाली जीत के गर्व से फूल आयी थी। वह सरनाम को सिखायेगी, उसे एक सबक़ देगी....

पर निडर सरनाम उसकी आँखों के सामने घूम जाता है। वलिष्ठ सरनाम पत्थर की लाट की तरह खड़ा होता है....सीने पर कसी हुई कारतूसों की पेटी, बन्दूक से खिलौने की तरह खेलता हुआ—धाँय....धाँय....दस-बीस तीस....धाँय....धाँय....अविचलित सरनाम ! खतरे में भी सरदार की लाश को चादर की तरह कंधे पर डाले हुए वह ओझल हो गया और तब हाथी डुबाऊ तालाब में झम्म ! सरनाम नहीं, कोई चट्टान तालाब की छाती पर गिरी थी....गाँव भर गूंज गया, चार सौ आदमियों का घेरा, पर वह यह गया, वह गया.... रोआँ तक न छू पाया कोई, दिलेर सरनाम !

अँधेरी रातों में घुरघुराते इंजन के ऊपर बैठा सरनाम ! खाई-खड्ड....ऊबड़-खाबड़ सड़क....पर उसकी बाँहें हैं कि ट्रक उछलता चला जाता है ! उसकी बाँहों की उभरी हुई नसें, पसीने से चिपकी हुई कमीज और थरथराती हुई मांसपेशियाँ—पथरीला शरीर....पिस गयी थी वह....रग-रग निचुड़ गयी थी, हड्डी-हड्डी चटक गयी थी, और उस हड़फूटन का अनिर्वचनीय सुख ! कैसे लड़ेगी वह उससे ! मन क्यों डूब-डूब जाता है—उस पत्थर के शरीर को सँभालने का मन होता है, बनाये रखने को जी करता है ! उसे छुए, उस पर हाथ पटके और चट्टानी सीने के नीचे

दब कर मर जाये....कुचल कर मर जाये; पर उसे न बिखरने दे ! उस चट्टान पर एक खरोंच तक न आने दे !

और वह पागल हो जाती है। बदहवास-सी इधर-उधर ताकती है। अभी-अभी गुस्से में तोड़े हुए मिट्टी के प्याले के टुकड़े बटोर लेती है....कितना बड़ा पागलपन था....वह कभी नहीं तोड़ सकती उसे, और अगर तोड़ा भी तो फिर बटोर लेगी इसी तरह ! पर यह होता क्या है? क्यों वह कुछ तै नहीं कर पाती ? शायद सरनाम कभी आये... अड्डे पर वह रोज़ उसे देखती है—टाट का पर्दा हटाकर वह खड़ी देखती रह जाती है....और करे भी क्या ? घर में और कौन है जिसके लिए कुछ करे। पूरा दिन यूं ही जाता है ! सौ-पचास बार सरनाम की आँखें उससे मिली हैं और पलकें झुका कर वह या तो इमली की ओट हो गया या भीतर छप्पर में घुस गया। कभी भर आँख ताका नहीं....ताकेगा किस ताकत से। अपनी ग़लती महसूस करता है, पर साथ ही उस दिन शाम को कह रहा था इनसे—'जा....जा.... घरवाली की हिफाज़त कर, बुत्ता दे जायेगी....' तब उसका मन हुआ था कि जाकर मुँह नोच ले उसका ! चमकती आँखों में सूजे भोंक दे ! वह बुरी तरह चिढ़ जाती थी। रंगीले सरनामसिंह के बारे में कुछ भी सुनने को तयार न होता। अकेला शिवराज ऐसा था जिससे उसकी पटती थी। आदमियों के बीच में रह कर शिवराज किसी नारी की छाँह के लिए तरस जाता....और बंसिरी में उसे सभी रूप एक साथ मिल गये थे—माँ, बहिन और मित्र ! शिवराज उमर में छोटा पड़ता, फिर भी वह सब तरह की बातें कर लेता, हर बात बंसिरी से कहता और राय लेता। बंसिरी के लिए भी शिवराज बहुत बड़ा सहारा था, सरनाम के बारे में वह लगातार पूछती रहती और वह बताता रहता।

....सरनामसिंह अपनी बात खतम करके मंगल के साथ अड्डे पर आया। शिवराज अड्डे पर खबर लेकर नियमानुसार बंसिरी के पास चला गया। आते ही बोला, 'चाची, आज फिर तैयारी हो रही

है....वो मंगल आया है, घर पर सब तै हुआ है, मुझे जबरदस्ती अड्डे की तरफ़ टरका दिया....'

'मेरे पास आने को टोका होगा !' बंसिरी ने सबसे पहले यही बात पूछी, क्योंकि वह जानती थी कि सरनाम शिवराज का उसके पास आना-जाना पसंद नहीं करता । एक बार उसने रंगीले से भी कहा था--'कुछ मेरा भी खयाल करो....क्या तुमने सब की खुराफातों में साथ देने का पट्टा लिख दिया है ! तुम्हारे सरनाम सिंह तो अकेले फ़क्कड़ हैं, पर तुम्हें कुछ हो गया तो मैं कहाँ की रह जाऊँगी !' और उसी रात जब कच्ची शराब की बोतलें छुपा कर रंगीले ने घर पर रखी थीं तो उसने तूफ़ान उठा लिया था !

इसी तरह के न जाने कितने झगड़े, टंटे रोज लगे रहते । बंसिरी सरनाम को ज़रा भी नहीं सह पाती । उसकी बात आयी नहीं कि उसकी भौंहे टेढ़ी हुईं। और रंगीले इस कशमकश से परेशान रहता । समझ में नहीं आता कि वह आखिर क्या करे जो सब कुछ ढर्रे पर आ जाय ।

शिवराज ने कहा, 'उनके टोकने से क्या होता है । जहाँ मन होगा जाऊँगा....देखो चाची, उधर देखो....' खिड़की का टाट वाला पर्दा हटाते हुए शिवराज ने मंगल को पहचनवाया था, 'यही आदमी है ! पिछली बार भी यही था !'

'कब जा रहे हैं ये लोग !' बंसिरी ने जानना चाहा, पर शिवराज को तारीख नहीं मालूम थी । नीचे अड्डे पर सरनामसिंह इंजन का हुड खोले कुछ देखभाल कर रहा था और रंगीले लारी की छत पर सवारियों का सामान चढ़वा रहा था । मंगल पास खड़ा बीड़ी धौंक रहा था । थोड़ी देर बाद लारी छूटने का वक्त हुआ तो रंगीले दौड़ा-दौड़ा घर आया और छुपा कर रखी हुई खाली बोतलें एक बोरी में लपेटकर फुर्ती से वापस चला गया । भुर्र. . .भुर्र करके लारी स्टार्ट हुई और धूल का बादल छोड़ कर सीधी सड़क पर खड़खड़ाती हुई चली गयी ।

सुना दड़े में इस बार घाटा हुआ है !' बंसिरी ने मालूम करना चाहा।

'कल ही चार सौ कमीशन के मिले हैं, घाटे का सौदा भैया नहीं करते ! पर सुना है इस बार पुलिस पीछे पड़ गयी है। आजकल चोरी-छिपे नम्बर लगते हैं और छिपा कर ही भुगतान होता है।' शिवराज ने कहा तो बंसिरी से न रहा गया, 'तुम आदमी हो रहे हो पर लड़कपन अभी नहीं गया—मेरी बात मानो शिवराज ! जैसे भी हो अपने को अलग कर लो इन लोगों की मण्डली से, पढ़-लिख लिया है, तुम्हें कुछ और करना है। जजी-कलक्टरी में नौकरी तलाश करो....अपने भाई-भौजाइयों को छोड़े पड़े हो....आखिर वे ही काम आयेंगे ! कोई ठिकाना है सरनामसिंह का ! ज़िले में रोज नयी वारदातें होती हैं, आज यहाँ डकैती तो कल वहाँ क़तल इस तरह कब तक खैर मनायेंगे ये लोग अपनी....आखिर एक रोज पकड़ा जायगा, तब क्या इज़्ज़त रह जायगी !'

'मेरा भी मन अब ऊबता है, लेकिन जब तक अपने पैरों न खड़ा हो जाऊँ तब तक तो बड़ी मुश्किल है ! मुझे खुद लिहाज़ लगता है इस तरह रहते, लेकिन अभी कोई रास्ता नहीं....!'

'लिहाज़ की बात करते हो ! तुम्हें नहीं मालूम लोग कैसी-कैसी बातें करते हैं तुम्हारे लिए ! मेरा भाई होता तो ज़हर दे देती, पर इस तरह की बात न सुनती.....' बंसिरी का इशारा समझ कर शिवराज लज्जित हो गया। शिवराज चुपचाप सुन लेता है। कहे भी क्या ? जब-जब बंसिरी उसे इस तरह धिक्कारती तब उसका किशोर पौरुष भीतर से हुँकार उठता है, और वह अपने को आदमी महसूस करने लगता है ! सचमुच उसे क्या बना रखा है सरनामसिंह ने !

और सरनामसिंह उसे हमेशा सिखाया करता है—'औरत से बड़ी खाई इस दुनिया में नहीं। आम की तरह चूस लेती है। आदमी वही है जो औरत से अपने को बचा जाय ! कभी उसके फंदे में न

फँसे । अपनी ज़िन्दगी जीना हो तो औरत को कोसों दूर रखे.... तन-वदन, धन-दौलत, ऐश-आराम की दुश्मन है औरत । और फिर ऐसा क्या है जो पैसे से नहीं मिलता....औरत कब धोखा दे देगी, कब प्यार करते-करते तुम्हारी जान की दुश्मन हो जायेगी, कोई ठिकाना नहीं !'

लेकिन शिवराज को वंसिरी की बात ही ज्यादा जँचती है । जब उसके सामने हेम खड़ी हो जाती है, तब सरनाम की सारी बातें बड़ी उथली और बेइमानी लगने लगती हैं ! सारहीन, बेतुकी । और वंसिरी के पास बैठ कर उसे एक अजीब-सी तृप्ति मिलती है, अद्भुत सलोनी-सी अनुभूति होती है—अपने सारे स्नेह के बावजूद बंसिरी कभी-कभी बड़ी रहस्यमयी हो जाती है । वह चाहता है कि बंसिरी के तन और मन में छुपे गुह्य भेदों को जान सके....उसके तन को वह देखता रह जाता ! तरह-तरह की कल्पनाएँ करता । और वंसिरी के तन के एक-एक रूपाकार की कल्पना से वह हेम के शरीर का अनुमान लगाता ।

कई बार वह हेम के विषय में बताते-बताते रुक गया । पर एक रोज़ जब सरनाम ने उसे लड़कियों के पीछे घूमने की हरकत पर डाँटा, तो वह आया था और हिचकते-हिचकते बंसिरी को सब कुछ बता दिया था, उस दिन से बंसिरी ने उसे और भी सहारा दिया था ! और सचमुच वंसिरी इस बात से दुखी होती थी कि सरनाम अपनी बिगड़ी हुई आदतों के कारण शिवराज को बिगाड़े डाल रहा है। उसकी स्वाभाविक गति को रोके हुए है, उसे ग़लत रास्ते पर डाल रहा है । जब भी मौक़ा मिलता, वह शिवराज को ताने दिया करती, उकसाती और उसे अहसास कराती कि उसकी दशा एक गई-गुज़री औरत से भी बदतर है ! और वह बड़े ग़ौर से देखती रहती कि शिवराज में स्त्रैणता के गुण आते जा रहे हैं। शौकीनी बढ़ती जा रही है....आज भी उसने शिवराज को तर्जनी में अँगूठी पहने देखा तो कटाक्ष कर बठी—'ये लड़कियों की तरह क्या अँगूठी पहन रखी है....' छँगुनी के

नाखून पर नेलपालिस देखी तो चाकू लेकर छुटाने बैठ गयी....'तुम लड़की हो जाओ शिवराज !' और इससे पहले कि बंसिरी चाकू से उसे छुटाये, उसने खुद अपने दाँतों से उसे खरोंच डाला !

बात करते-करते बंसिरी अपने गाँव के जवानों के किस्से लेकर बैठ गयी....'बड़ा बाँका जवान था अद्दा ! तेल-फुलेल नहीं, मिट्टी से रचा रहता था। गाँव भर की लड़कियाँ जान देती थीं उस पर—शेर की तरह घूमता था खेत-खलिहानों में। नीमवाले सैयद बाबा की दाढ़ी नोच लाया था, तब से गाँव के सैयदबाबा को किसी ने नहीं देखा....लोगों ने कहा, 'अब खिला-खिला के मार डालेगा !' पर अद्दा हट्टा-कट्टा घूमता रहा। बाल बाँका नहीं हुआ उसका।

बंसिरी जब ऐसी बातें सुनाती तो शिवराज अपने में सिमट जाता। उसे पछतावा होता कि क्यों हेम के बारे में वह सब कुछ बता गया। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके वह उठता। सराय के होटल पर खाना खाता और बाजामास्टर के पास जा बैठता। या शाम को घुमता-घामता अड्डे पर आ बैठता....आजकल हेम कहीं किसी रिश्तेदार के यहाँ कुछ दिनों के लिए बाहर गयी हुई थी। अड्डे पर खासा मजमा रहता। मोटर की छतों पर ड्राइवर और क्लीनर गद्दियाँ बिछा-बिछा कर मोमबत्तियों के सहारे फ्लश खेलने में मशगूल रहते। या किसी मोटर की छत पर किसी विरही ड्राइवर, क्लीनर या कमीशन एजेण्ट का किस्सा छिड़ा होता और ऊँची आवाज़ में गाना चलता—

गोरी मोहे जमना के पार मिलना....

गाता एक, पर ताल सब देते और फ्लश खेलते लोगों की गरदनें भी उसकी ताल पर झूमती रहतीं। आखिर मोटर आने तक अड्डे पर जगह रहती थी, उसके बाद नशे में बुत्त लोग इस तरह सोते जैसे साँप सूंघ गया हो। दूर सड़क पर आती हुई लारी की रोशनी चमक उठी थी ! अड्डे में थोड़ी जान आयी, पर ज्यादातर लोग अपने-अपने सोने का इन्तज़ाम कर रहे थे। मंगल फ्री स्कूल की कार्निस

पर इन्तज़ार में वैठा था। मोटर रुकते ही वह सरनाम के पास पहुँचा उसका पारा चढ़ा हुआ था। रंगीले सवारियों का सामान उतारने के लिए ऊपर छत पर चढ़ गया।

हाथ झाड़ते हुए, थकन से चूर सरनाम जाकर तखत पर वैठ गया।

शिवराज को आज अकस्मात अड्डे पर देख कर आश्चर्य हुआ, बोला, 'क्यों,—कोई बात है ?' शिवराज ने कहा कि यूँ ही चला आया तो सरनाम को थोड़ी ख़ुशी हुई। उसे लेकर वह होटल को चल दिया। रास्ते में बोला, 'आज कितने दिन वाद तुम्हें हमारे साथ खाने की फ़ुर्सत मिली है !' सुनकर शिवराज चुप रहा। होटल में पहुँचा तो डा० लालचंद जमे हुए थे। सरनाम इन्हें पहचानता था, इसलिए कि ये खद्दर पहनते थे और सन बयालिस के वाद जब वह लड़ाई से वापस आया था तो लोग इन्हें नेताजी-नेताजी कहकर पुकारते थे ! बीच में डा० लालचंद कहाँ रहे, यह कोई नहीं जानता। डा० लालचंद ने सरनाम को देखते ही पुकारा, 'कहिए सरनामसिंह जी, क्या हाल हैं ?'

'सब ठीक है डाक्टर साहब !' कहकर वह खाने के लिए बैठने जा ही रहा था कि डा० लालचंद ने कहा, 'आपसे मिलना था मुझे, यहीं मुलाक़ात हो गयी....' और उन्होंने अपनी योजना सरनाम के सामने पेश कर दी—'शहर में चार अड्डे हैं। कम से कम तीस ड्राइवर और इतने ही क्लीनर होंगे, और बाकी काम करने वाले मिलाकर सौ-सवा-सौ के करीब हो जायँगे। इतनी बड़ी ताक़त के होते हुए, हमारे ज़िले में एक भी मोटर यूनियन नहीं। आप सब लोगों के सहयोग से एक कर्मचारी यूनियन बन जाय, मोटर मालिक-यूनियन मालिकों ने अपने स्वार्थों के लिए बना रखी है, लेकिन असली काम करने वाले बिखरे हुए हैं। जितना काम लिया जाता है ! उतना पैसा नहीं मिलता। नौकरी की मुस्तकली का कोई ठिकाना नहीं। जब जिसे जी चाहता है, मालिक निकाल बाहर

करता है....सच पूछिए तो मजदूर और मालिक का झगड़ा हर जगह हर स्थिति में है। मुश्किल यह है कि मज़दूर संगठित नहीं होते, इसीलिए उनका शोषण होता है ! वे नहीं जानते कि उनकी लड़ाई क्या है ? कहाँ है ?'

'यह सब मैं नहीं जानता । मैं आदमी—मज़दूर आदमी की लड़ाई हमेशा दूसरी जगह देखता हूँ—जिस लड़ाई की ओर आपका ध्यान है वह फैक्टरियों से भरे कानपुर, बम्बई या अहमदाबाद में हो सकती है, यहाँ नहीं । यहाँ सब जीने के लिए संघर्ष कर रहे हैं ! मालिक और मज़दूर , वकील और मुहर्रिर, दूकानदार और नौकर—सभी एक नाव में हैं, और उस नाव के चारों ओर एक तरह का तूफ़ान उमड़ रहा है !' सरनाम से तलखी से कहा ।

'ठाकुर साहब ! असल में लड़ाई की बात....' बीच ही में डा० लालचंद की बात सरनाम ने काट दी, 'इन धर्म मंडलियों से लड़िए डाक्टर साहब जो यहाँ के मेहनतकश लोगों को सोचने-समझने का मौक़ा नहीं देतीं, इन ओझा और पाखण्डियों से लड़िए जो मज़दूर के पसीने की कमाई चाट जाते हैं—इन ऊँची जात के कहे जाने वाले लोगों से लड़िए जो आदमी को आदमी नहीं बनने देते । इन मंडी वालों से लड़िए जो मुनाफ़े के लिए बरसात में गल्ले को गोदामों में बन्द करके बाहर भेजने के लिए रोक रखते हैं । ज़िला बोर्ड के उन अमलाओं से लड़िए जो स्कूल बनाने के नाम पर पैसा खा जाते हैं। चुंगी के अफ़सरों से लड़िए जो हैज़े की रोक-थाम के लिए नालियों पर सिर्फ़ चूना डलवा कर दवाइयों का पैसा हज़म कर जाते हैं—अस्पताल के डाक्टरों से लड़िए जो गरीबों के लिए मिलने वाले इंजेक्शनों को बेच लेते हैं, दवाओं में पानी मिलाकर रोग का इलाज करते हैं !'

इससे पहले कि डा० लालचंद कुछ बोलें, कुछ रुक कर सरनाम कहता ही गया—'उन सप्लाई अफसर से पूछिए जो सीमेंट की बोरियाँ बनियों को बाँट कर खत्म कर देते हैं। उन ठाकुरों से लड़िए

जो अहिंसा और गाँधीजी के नाम पर ज़िला कमेटी के सभापति पद के लिए दस-बीस के सर तुड़वा देते हैं....उन नेताओं से लड़िए जो जातिवाद के नाम पर वोट बटोरते हैं....भूदान कमेटी के अधिकारियों से लड़िए जो रिश्वत ले-लेकर ज़मीनें बाँटते हैं ! उन अफ़सरों के बँगलों पर धरना दीजिए जो नशाबंदी क़ानून के नोटिस पर दस्तखत करके अंग्रेजी शराब की चुस्कियाँ लेते हैं, उन काली टोपी वाले संघियों से लड़िए जो घृणा फैलाकर मुसलमानों को चैन की नींद नहीं सोने देते ! उन पाखण्डी गांधीवादी नेताओं से लड़िए जो नेतागीरी के नाम पर पचासों घरों की लड़कियों को बरबाद कर रहे हैं" कहते-कहते सरनाम का मुंह तमतमा आया था, 'कितनी लड़ाइयाँ हैं डाक्टर साहब ! आँखें खोलकर देखिए डाक्टर साहब ! लड़ाई कहाँ है ? ये सेठों-अमीरों और पूंजीपतियों की बस्ती नहीं, हर गली वीरान है इसकी....हर गली में एक से किरासिन के लैम्प टिमटिमा रहे हैं, हर गली में धूल उड़ रही है, हर गली अँधेरी और सुनसान पड़ी है ! हर गली में इन लड़ाइयों के मुकाम हैं....यहाँ किसी मालिक की छत ऊँची नहीं, किसी सेठ का मकान चमचमाता हुआ नहीं ! पर यहाँ हर ब्राह्मण की इज्ज़त ऊँची है, हर कायस्थ का माथा चमचमाता हुआ है, हर क्षत्रिय की नाक ऊँची है ! इस झूठी इज्ज़त को धूल में मिलाइए, उस चमचमाते खोखले माथे को झुकाइए, उन ऊँची नाकों को काटिए—तब बराबरी होगी डाक्टर साहब ! बराबरी....' जैसे उसके मुंह से कोई कड़वा शब्द निकल आया हो, और उसके मुंह का स्वाद बिगड़ गया हो ! कितनी पीड़ा होती है इस शब्द को सोचकर, बोलकर....

डा० लालचन्द अवाक् सुनते रह गये, मन में आया कहें, 'ठाकुर सरनामसिंहजी और आपकी ज़िन्दगी ?' पर सरनाम की आँखों में जो आग धधक रही थी, उसकी आँच ने उनका सारा साहस भस्म कर दिया, लेकिन कहीं मन में अपने स्वयं के खोखलेपन से वे घबरा उठे....लगा, कितने बड़े झूठ में वे जी रहे हैं....सचमुच इस बस्ती का

संघर्ष उस किताबी संघर्ष से कितना अलग है ! डा० लालचन्द अपने खयालों में डूबे हुए थे, तभी सरनाम का स्वर फिर उनके कानों में पड़ा....ऐसा स्वर जो किसी पवित्र आत्मा के मुंह से फुट रहा हो—'और मुझे ही देखिए डाक्टर साहब ! क्या मैं नहीं जानता कि मैं खुद क्या हूँ ? या आप मेरी असलियत नहीं जानते होंगे ! लेकिन आप मेरे मुँह पर कह नहीं सकते ! क्यों, इसे आप भी जानते हैं और मैं भी....लेकिन मैं जो कुछ हूँ, उसके लिए सिर्फ़ मुझे अफ़सोस हो सकता है, ऐसा कुछ भी नहीं; जिस पर दुनिया अफ़सोस कर सके ! एक आदमी के नाते मैं बुरा भी हूँ—पर सिर्फ़ अपने लिए....मेरी बुराइयाँ दूसरों को बुरा नहीं कर सकतीं, क्यों कि मैं अकेला होकर जीता हूँ। लेकिन जो सब के लिए जीते हैं....जो यह कहते हैं कि वे दूस ों के लिए जी रहे हैं, उनकी बुराइयाँ छत के रोग की तरह फैल कर तबाह कर देती हैं ! इस तबाही को रोकने के बाद ही एक-एक आदमी को सँभाला जा सकता है ! अपने चारों तरफ़ एक अच्छी दुनिया देखकर बुरा आदमी खुद सँभलेगा, उसकी हिम्मत नहीं कि वह बुरा रह सके !'

'लेकिन भाई ! जब तक आदमी खुद अपनी बुराइयाँ दूर नहीं करता तब तक....' डा० लालचंद कह ही रहे थे कि सरनाम ने बात काट दी, 'ऐसा आप इसलिए सोचते हैं कि आप आदमी को आरम्भ से बुरा मानकर चलते हैं....आदमी को अच्छा मानकर चलिए। इस ज़माने के आदमी ने बुराइयों के बीच आँखें खोलीं, उसने अच्छाई देखी ही नहीं, और जो कुछ अच्छा इस ज़माने ने प्राप्त किया उसकी रोशनी से जबरन उसे दूर रखा गया, उसे अच्छाई से दूर रखकर बुराइयों के बीच खाली वक्त दे दिया गया, तब वह क्या करता ? आदमी है कि कुछ करेगा....बग़ैर किये वह ज़िन्दा नहीं रह सकता ! इसीलिए जो राहें उसे मिलीं, उस पर वह चल पड़ा....' कहते-कहते सरनाम दार्शनिक की भाँति गम्भीर हो आया था, 'मुझे जो राह मिली, मैं भी उसी पर चल पड़ा, हर वह आदमी जिसे आप ख़राब

समझते हैं, उसकी यही कहानी है !....' सरनाम एकदम चुप हो गया। शिवराज लगातार उसे ताके जा रहा था। उसके मन से सारी ग्लानि जैसे धीरे-धीरे बहती जा रही थी।

डा० लालचंद हाथ धोने के लिए उठे तो सरनाम ने कहा, आप, मिलियेगा डाक्टर साहब, वहीं अड्डे पर ज्यादातर रहता हूँ !'

होटल से घर तक रास्ता खामोशी के बीच कट गया। शिवराज अपनी खाट बिछा कर सरनाम का बिस्तर लगाने लगा। सरनाम ने देखा, पर कुछ बोला नहीं। शिवराज ने नया काम किया था। कपड़े उतार कर सरनाम कमरे में घुस गया। बोतल खुलने की आवाज़ शिवराज ने सुनी थी....कई बार आँख खुली पर सरनाम बिस्तर पर नहीं दिखाई पड़ा। कमरे में लालटेन की हलकी रोशनी थी—सरनाम पीते-पीते लस्त होकर दीवार के कोने से सिर टिकाए धुत्त पड़ा था। बोतलें और गिलास पास लुढ़क रहे थे। शिबराज भयभीत-सा देखता रह गया। बड़ी मुश्किल से रात गुज़री....वह समझ नहीं पाया कि यह कौन-सा सरनाम था ! वह इसे प्यार करे या घृणा....

सवेरे ही शराब की बोतलों के लिए मंगल आ गया। सरनाम और मंगल जब अड्डे की तरफ़ चले तब धूप काफ़ी निखर चुकी थी। रंगीले का पता लगाया गया, पर वह लापता था। इधर-उधर पूछने से पता लगा कि रंगीले किसी की मिट्टी में गया है।

अगले चौराहे पर हंगामा सुनकर उधर देखा तो एक अर्थी चली आ रही थी। हाथ-डेढ़-हाथ की अर्थी, आगे रंगीले उठाये था, पीछे बिरजू। शव पर लाल अबीरी कप ा था और छोटी-सी अर्थी में झडियाँ वग़ैरह लगी थीं। आगे-आगे बाजे वाले किसी फ़िल्मी गीत की धुन बजाते हुए चले आ रहे थे।

चन्दे के लिए अर्थी अड्डे पर रोक ली गयी।

'कैसा चन्दा ?'

अर्थी उतार कर रंगीले ने वताया, 'बानर भगवान् स्वर्गलोक सिधारेह....मन भर लकड़ी काफ़ी होगी !' अ र्थी के जुलूस में शामिल होने वालों के माथे पर महाबीरी टीका लगा था। असलियत जानकर मंगल बिगड़ा, 'बन्दरों को मुर्दघटा पहुँचाते रहोगे कि उसका इन्तज़ाम होगा।'

'आज जजी-कचहरी में गवाही के लिए हाजिर होना है, श्मशान से नहा-धोकर उधर जाना है, शाम तक या कल तुम्हारा सामान आ जायेगा !' रंगीले ने कहते हुए बाजे वालों को इशारा किया और अर्थी मुर्दघटा की ओर चली गयी।

....शिवराज पिछले कई महीनों से बहुत भावुक होता जा रहा था। हेम की शादी तै हो गयी थी। उसे लगता था जैसे वह एक अत्याचारी समाज के बीच आ गया है। उम्र अभी अट्ठारह की होगी, पर न जीवन का उछाह न उदण्डता। रह-रह कर अनजान चेहरों की याद सताया करती—मन करता, किसी स्वप्नलोक में उड़ जाय, ऐसा लोक जहाँ कोई न हो—वह हो और उसकी कल्पना। दूर कहीं बजते ग्रामोफोन से गीत का स्वर आ रहा है—'जब तुम्हीं चले परदेस लगाकर ठेस ओ प्रीतम प्यारा !' उसकी आँखें भर-भर आती हैं....और हेम सदा-सदा के लिए जैसे परायी होकर चली जाती है। और शिवराज उस भविष्य के दुख और विरह की कल्पना में सोचता है—अब तुम्हारी सुधि को प्यार करूँगा रानी ! सुधि तो नहीं छीन सकता यह क्रूर समाज....और वह रात-रात भर रो-रोकर एक गीत की पंक्तियाँ जोड़ता रहता है, बार-बार वही ग्रामोफोन का गीत उसकी स्मृति में आकर उलझता है और उसके भग्न हृदय से पुकार फूटती है—'तू मेरा दुख जान न सकती !

सम्भव सुख के अश्रु समझ ले।
मगर समझ दुख गान न सकती !'

रात भर वह सो नहीं पाया और हेम के विवाह की काल्पनिक बातें उसे कचोटती रहीं, पर कविता बन गयी थी। आज वह समझ पाया था कि कविता के लिए विरह की क्या महत्ता थी !

आखिर बड़ा भरा हुआ दिल लेकर हेम को पत्र लिखने बैठ गया—

हृदय की रानी हेम !

निठुर नियति के हाथों बार-बार प्रताड़ित होने पर भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ता....सुना तुम्हारा विवाह तै हो गया है....यह दैव-दुर्विपात ही है मेरी रानी ! मेरे आँसू नहीं थमते। मेरे हृदय को तुमने कभी समझा ही नहीं, जो तृप्त होते हुए अतृप्त था, उसमें शायद अब भी पिपासा है जो आमरण शान्त न हो सकेगी....तुमने तो आशाओं पर निराशा की काली चादर डाल दी ! तुम्हें भी किसी शलभ को अपने जीवन-दीप की आँच से जलाने की खूब सूझी और सफल भी हुईं, अतएव उस शलभ की बधाई स्वीकार करो। एक प्रार्थना है, भूलना मत उस शलभ को, जिसने अपने अरमानों की चिता में आग लगा दी....

महरूमे तरब है दिले दिलगीर अभी तक,
बाकी है तेरे इश्क की तासीर अभी तक !

और मेरी रानी, ये मेरी कविता लो....टूटे हुए दिल की पुकार सुन पाओ तो सुनना—तू मेरा दुख जान न सकती !

सम्भव सुख के अश्रु समझ ले,
मगर समझ दुख गान न सकती ! तू....
इस जीवन की और न आशा
लौट रहा प्यासा का प्यासा
करा मुझे विषपान जो सकती'! तू....

अभागा—शिवराज

पत्र को जेब में डालकर शिवराज सीधा बाजामास्टर के पास पहुँचा। बाजामास्टर कुछ लोगों के साथ बैठे अपने भावी कार्यक्रम

के बारे में बातें कर रहे थे, नाटक होकर रहेगा। पर चंदा कैसे जमा होगा, स्टेज कैसे बनेगा और सारा इन्तज़ाम कैसे किया जाय। बात करते समय उनका चेहरा एक बारगी चमक कर बुझ जाता....। शिवराज उदास-सा उनके पास बैठ गया। रुक-रुककर अपनी बातें सुनाता रहा तो बाजामास्टर ने सुझाया—'चलो कार्निवल की तरफ़ चलें, कुछ मन बहल जायगा, मेरा मन भी बहुत ऊबता है....

शहर में कार्निवल को आये दो-तीन दिन हुए थे। एक तरफ सरकस था, एक तरफ़ जुए का अड्डा और एक तरफ़ जिन्दा नाच-गाना। न जाने क्यों जब से शिवराज का प्रेम टूटा था, वह अपने को आदमी समझने लग गया था—एक बेपरवाह भूला-भूला-सा बिगड़ा हुआ आदमी....बड़ी खुली आवाज़ में, निःसंकोच भाव से बाजामास्टर से बोला—'चलो एकाध दाँव आजमाया जाय, जीत गये तो नाच देखेंगे....'

'एक नाचने वाली से मेरी जान-पहचान है, कमला नाम है उसका। मिलोगे उससे!' बाजामास्टर ने पूछा।

'किसी से भी मिलवा दो मास्टर, ग़म भूल जाऊँ....बस!' बड़े टूटे हुए दिल से शिवराज ने कहा और वे दोनों नम्बर लगाने के लिए जुए की मेज़ों की ओर बढ़ गये....

एक नयी दुनिया का नक्शा उसके सामने खुल गया....वह भरमाया भूला देखता रह गया....सरनाम का चला जाना जैसे उसके लिए वरदान बन गया....वह मुक्त था, निर्बंध।

बंसिरी बेहद परेशान थी इधर, शिवराज भी कई दिनों से नहीं आया। सरनाम भी अड्डे पर नहीं दिखायी दिया, न जाने कैसी बात थी—जब वह आँखों के सामने होता, उसका होना अनुभव में होता तो प्रतिहिंसा धधकती रहती और आँख ओट होते ही व्याकु-

लता भरी छटपटाहट कुरेदने लगती। न उसका जीना सह पाती थी, न मरना। जब-जब वह इस तरह ओझल होता तो उस एकाकी व्यक्ति की एकांतिक व्यथा और दुखों की गोपनीयता दिल में कसक-कसक जाती....चंचल सम्मोहन-सा रबर की तरह खींचता और उसके आते ही जब वह रबर एकाएक छूट कर चपेट मार जाती तो मन बौखला उठता—न जाने वह कहाँ होगा—किसी बीहड़ जंगल में....काली नदी या चम्बल के भीटों में....किसी अस्पताल में या न जाने शायद....किसी बंजर-वीरान ऊसर में उसका निर्जीव शरीर ....जीभ दाँतों से कट जाती है....'हे देवी ! उसकी कुशल तेरे हाथ है माई ! उसने किसी का क्या बिगाड़ा है, खुद बिगड़ गया है माई ! दया करना....उसे क्षमा करना, सब पापों का बदला इस तन से ले ले दयावती !' मुंदी आँखों से आँसू झरने लगते हैं। किसके लिए जिए वह ! परछाईं का ही सहारा है मेरे भगवान् ! उसकी कुशलता की ओट यह बिरवा पनपा है ! रंगीले पर आया हुआ सारा गुस्सा खतम हो जाता है, मन करता, उसे ही मन से चाह लें, यह उसके पास उठते-बैठते हैं, उसकी बातें करते हैं....कितने भाग्यवान हैं ये कि उसका दुख-सुख जानने के भागीदार हैं....सचमुच किसी के दुखों का भागीदार बन सकने में कितनी तृप्ति मिलती है ! जब आदमी आदमी की पीड़ाओं को एकाकार होकर सुनता और अनुभव करता है तो न जाने किन ऊँचाइयों पर पहुँच कर सुनहली भावनाओं से भर जाता है....व्यथा न जाने कितने रंगों में फूट-फूट कर सम्मोहित कर लेती है....व्यथा का सन्तोष सार्थकता दे जाता है और जीवन की उपयोगिता उजागर होकर दिग-दिगन्त में व्याप्त हो जाती है ! किसी व्यथित-पीड़ित के अन्तरवासी रहस्यों को जानकर अपने अस्तित्व का गौरव जागता है ! वह सन्तोष, वह सम्मोहन और उस गौरव का भोक्ता कोई बन पाये, तब न ! उसने तो अपने से ऐसा काट दिया कि जुड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता, और जिससे जोड़ा—वह....

वह इमली वाले चौराहे पर चरही बनवाने में। मशगूल था....
'ये जानवर भटकते फिरते हैं....इन्हें प्यास नहीं लगती क्या ?' लदे हुए गदहों की पीठ से ईंट उतरवाते हुए रंगीले कह रहा है—'अब से गोपाष्टमी पर कंस के मैदान में जानवरों का मेला लगेगा.... बिरजभूम की गइयाँ मैला खाती फिरती हैं, खत्ताखानों में मुंह डालती फिरती हैं....'

'चुंगी की जमीन है, पूछ-पाछ भी लिया है !' खिन्नी के पेड़ के नीचे हाल कूटते हुए लुहार ने जानना चाहा।

'ये जो कांगरेस का झण्डा बीच चौराहे पर चौतरा बनाकर गाड़ा गया है इसके लिए भी किसी ने पूछा था !' रंगीले जानता था कि चतुरी लुहार कांगरेस वालों के साथ उठता-बैठता है, चुनाव के जमाने में दो बैल वाला बिल्ला लगा कर दौड़-धूप कर रहा था।

'वो तो देस का झण्डा है, देस का काम करने वाले नेता लोगों ने गड़वाया है....'

'तो ये भी देस का काम है ! जानवर मर जायेंगे तो आदमी भी नहीं बचेंगे ! गऊमाता के सींघ पर पिरिथवी सधी है इसको तुम्हारे नेता लोग भूल गये हैं....' रंगीले ने रौब से व्यंग्य करते हुए कहा।

मठिया की मूर्ति के पास बैठे बाबाजी ने चरस की लपट उठाते हुए साथ दिया—'ज्ञान की बात है बच्चा ! लेउ रंगीले बच्चा, दम मार के काम करो....अहा हा....लपट उठी है कि मशाल जगी है....'

गदहों की पीठ पर लदी ईंटों का चट्टा लगता रहा, एक दम मारकर रंगीले ने चतुरी लुहार को सुनाया—'पच्छी-जानवर के लिए मन से प्यार-सनेह उठ गया इसीलिए आफ़त टूट पड़ी ! रामजी ने जटाऊ को गले से लगाया था....शहर भर में घोड़ा-बैल को पानी नसीब नहीं होता ! यहाँ इमली की छाँह में सुस्तायेंगे और पानी पियेंगे....चुंगी क्या करेगी, हम कोई अपना घर बनवा रहे हैं या छाती पर ज़मीन धर कर ले जा रहे हैं !'

कांग्रेसियों के साथ उठने-बैठने से चतुरी पैंतरें से बात करना सीख गया था—'इतना दया-धरम अहिंसा की बात है, और जब आदमी अहिंसा करेगा तब उसे डरना नहीं चाहिए ! और आदमी डरेगा नहीं तो जीतेगा....और जीत तुम्हारी नहीं सत्त की होगी !' चतुरी लुहार ने कस्बे के कांग्रेसी नेताओं का लहजा कुछ ऐसा पकड़ा था कि अहिंसा, डर, जीत और सत्त उसकी हर बात में दखल जमा लेते थे और जुबान एक बात दूसरे से ऐसे जोड़ती जाती थी कि लगता था, दर्शन समझा रहा है ! पर मन ही मन वह इस ताड़ में था कि कैसे वह चुंगी वालों तक इसकी खबर पहुँचा दे, क्योंकि यही ज़मीन वह अपने साले के रोजगार के लिए प्राप्त नहीं कर पाया था। मिस्त्री साहब के आते ही बात-चीत का सिलसिला टूट गया।

बेचू मिस्त्री पाँचों तहसीलों में मशहूर हैं—कानून से लड़ना जानते हैं—यही ख़ास पेशा है । लड़ाई-झगड़े की इमारतें बनवाने और खसाने में इन्हें ही याद किया जाता है । किसी की जमीन दबाना हो, बेचू मिस्त्री रातों-रात चहारदीवारी खड़ी कर देने का दावा रखते हैं ! सरकारी ज़मीन पर कुआँ मन्दिर, धर्मशाला खड़ी कर देना बायें हाथ का खेल है, विश्वकर्मा के वंशज हैं !

ज़मीन नाप कर चरही बन गयी रातों-रात । सवेरे लोगों ने देखा तो कुछ ने बनवाने वाले को शाबाशी दी, कुछ ने नाक-भौं सिकोड़ी । प्लास्टर अभी गीला था इसलिए रंगीले दिन भर देखभाल के लिए तैनात रहा । और उसके बाद रंगीले के लिए एक काम और बढ़ गया—चरही को भरना ठट्ठा नहीं था ! कुएँ से पानी खींचना ! पचास कनस्तर पानी पड़ता था, पर कोई दिन ऐसा नहीं गया जब पानी न भरा गया हो । कुएँ की चरखी सवेरे-सवेरे खड़खड़ाती तो जरूर होती—रंगीले चरही भरने आये हैं। लस्त हो जाता वह, बाँहों की नसें फूल आतीं, पेट धौंकनी की तरह चलता पर खड़.... खड़....खड़ खड़ खड़र....खड़र....किसी पुराने भजन की एक पाँत या फिर गाँधी जी का वह प्रिय गीत—'उठ जाग मुसाफिर भोर

भयी अब रैन कहाँ जो सोवत है....' बड़ा प्रिय था रंगीले को यह गीत !

चरही भर कर कपोए हुए हाथ चिरचिरा उठते और जब वह मठिया पर बैठकर चिलम की दम लगाता तो साँस बैठती ! पर उन क्षणों का सन्तोष—जब कचहरी तक की लम्बी दौड़ लगाकर, मुंह से फेन टपकाते घोड़े चरही में मुंह घुसेड़ देते या सड़कों पर घूमती गइयाँ पानी पीकर वहीं सुस्तातीं या मंडी के लिए गाड़ियाँ ढोने वाले बैल हाँफ कर पानी पीते....तो उसकी आँखों में बच्चों की तरह भोलापन उभर आता, मुंह ऐसा खुल जाता कि चेहरे पर सैकड़ों झुर्रियाँ पड़ कर उसकी उमर दूनी कर जातीं !

....दड़े वाले कमीशन एजेण्ट इधर कई दिनों से सरनामसिंह की पूछ-ताछ कर रहे थे, पर रंगीले क्या उत्तर देता ? कैसे बताये कि कहाँ गया है, जब पाँच रोज हो गये तो उसे चिन्ता भी हुई, आखिर हुआ क्या ? मोटर मालिक से तो कह गया है—रिश्तेदारी में जा रहा हुँ—तीन दिन बाद वापस आ जाऊँगा ! पर अभी तक.... कहीं कुछ हो गया तो....और कौन ठिकाना—हिस्सा-बाँट में कहीं आपस में ही....पर सरनाम ऐसा-वैसा नहीं, बाल बाँका नहीं हो सकता उसका ! शिवराज का ंग-ढंग भी वह परख रहा था । कार्नीवल वाली पतुरिया के डेरे में पड़ा रहता है....कल पौडर खरीद रहा था—उसी के लिए खरीदता होगा—छैला हो रहा है ! अभी क्या हुआ—जूती गठवायेगा....

बंसिरी कैसे सहन करती यह सब, उसने कहा, 'उसे पकड़ लाओ इधर, मैं समझा दूंगी ।'

'मेरे बस का नहीं है वह लड़का ! नाच-गाने में जी लगता है उसका !'

'तुम कह देना मैंने बुलाया है । नाच-गाने में जी लगाने का दोष तो तुम्हारे सिंह जी का है ! कौन-सा ऐसा करम है जो बाकी बचा है उनसे ! किसी दिन दड़ा पकड़ गया तो जेल में सड़ेंगे.... '

'तुम्हारी तो हर बात निराली होती है, हर दोष सरनामसिंह के सर ! जो कुछ दुनिया में बुरा होता है, सब उसी की करनी है !'

'शिवराज को और किसने बिगाड़ा है ? उसके घर वालों से जुदा कर दिया, आसरम से भगा लाया और उसे मेहरा बना के....'

तुमसे इससे क्या ? वह करता है तो करे !'

'पर एक की ज़िन्दगी बिगाड़ दे ! कैसा प्यारा लड़का है, पर ढकेल दिया उसे भी कीचड़ में । अभी क्या है, डाकू बनाकर दम लेगा !'

'बंसिरी !' रंगीले ने कुछ क्रोध में कहा ।

तभी एकाएक बाहर से आवाज़ सुनायी पड़ी—'रंगी, रंगी !' सरनाम की आवाज़ थी । बंसिरी का पारा एकदम चढ़ गया । कान सतर करके एक-एक बात गौर से सुनती रही और जब रंगीले त्रिपाल के एक टुकड़े में लपेटे हुए हथियार भीतर छुपाने के लिए लाया तो वह बिफर उठी—'ये यहाँ नहीं रखे जायेंगे ! चाहे भगवान् उतर आयें, पर मैं कहती हूँ इन्हें ले जाओ....नहीं मानोगे तो मैं निकाल कर फेंक दूँगी और सब बता दूंगी....'

रंगीले की बातें चुभ रही थीं, सरनाम बरोठे में खड़ा है, सुन रहा होगा, क्या सोचेगा—औरत भी डाँट कर नहीं रखी जाती ! और वह भी बंसिरी को ऐसा नहीं समझता था । मुसीबत के समय तो उलझेंटा नहीं डालना चाहिए इसे । देखती नहीं, मिनट भर में क्या से क्या हो सकता है । रंगीले के आते ही सरनाम बिगड़ पड़ा—'बहुत सर चढ़ा लिया है तुमने इसे, वरना औरत की मजाल है कि इस तरह....'

काली माई का रूप धारण किये बंसिरी सारी शरम-लिहाज छोड़ कर सामने आ गयी, सरनाम पर आँख पड़ते ही प्रतिहिंसा की ज्वाला में उसका रोम-रोम झुलस उठा—'डकैती तुम करो, खतरा हम उठायें....'

'धीरे बोल....धीरे !' सरनाम ने हिकारत से कहा, जैसे अभी हुकुमअदूली पर गला ही दाब देगा, उसकी आँखों से चिनगारियाँ फूट रही थीं—'चुप होके बैठ भीतर ! कहीं व्याहता होती तो अब तक चबा गयी होती....' मुँह में आये हुए कड़ुवे थूक को निगल न पाने के कारण उसने वहीं थूक दिया। रंगीले भौंचक-सा हतबुद्धि की भाँति बस देखता भर रहा !

'थूक तू अपनी करनी पर ! अपने करमों पर चाण्डाल ! डाकू ! लुटेरा !....' न जाने कितनी गालियाँ बंसिरी के मुंह से निकलती चली गयीं और आग बरसाती आँखों से सरनाम ने रंगीले की तरफ़ देखा। एक ही झपाटे में रंगीले बंसिरी को लेता हुआ भीतर चला गया। सरनाम नाजुक वक्त जानकर एक़दम बाहर निकल कर अड्डे की तरफ़ चला गया !

गुज़रते हुए चतुरी लुहार ने ठिठक कर एक मिनट तक माजरा समझने की कोशिश की। सरनाम को अंधड़ की तरह जाते हुए देखकर सहम गया, जैराम करने की सुध भी नहीं रही। पर बंसिरी की चीखें सुनने के लिए वह कान लगाये खड़ा ही रहा....जब बातें धीमी पड़ गयीं तो वह अपने मुहल्ले की तरफ़ चला गया।

...कोतवाली में दूसरे दिन डकैती की रपट के साथ-साथ सरनाम सिंह फरार हो गया। शिवराज से वह थोड़ी देर के लिए मिल पाया था, कुछ रुपये देकर चला गया था, फिर पता नहीं किधर गया।

शहर में सनसनी थी, और रंगीले का कलेजा भीतर-ही-भीतर काँप रहा था, अब क्या होगा? सरनाम इतना ही बता पाया था उसे—'महूरत बिगड़ गया, जिस जगह का तै था वहाँ कुछ भी नहीं हो पाया। भेदिया दग़ा दे गया....उस साले से निबटना है ! पकड़वाने के सारे इन्तज़ाम थे, वह तो कहो किस्मत थी कि ऐन वक्त फरेब सूंघ लिया, नहीं तो दो-एक की जान जाती और बाकी पुलिस की गिरफ्त में आते ! दो दिन ढाक के जंगल में भूखे-प्यासे पड़े रहे। वापसी पर चलते-चलाते दूसरी जगह मौका लगा, खर्चा तो निकालना ही था।

पाँच सौ पर रायफिल आयी थी और सौ-दो सौ ऊपर—शेर के शिकार में गीदड़ मारना पड़ा ! पर वह भी नहीं मरा, साला, चार सौ कुल मिले, वह भी एक की बाँह तोड़कर....हथियार सँभाल कर रखना, मैं आऊँगा, मुकद्दमा चलने दो। वारंट से पकड़ गया तो बड़ी दुर्गत करेगी पुलिस। गिरफ्तारियाँ हो जायं तो खुद ज़ाकर कोर्ट में हाजिर हो जाऊँगा, फिकिर मत करना....'

....शिवराज इधर एकदम खुद मुख्तार हो गया। बंसिरी के पास भी नहीं आता। बाजामास्टर के साथ नाटक कम्पनी के निर्माण के लिए वह शियों की तरह घूमता है; रात-रात भर कुप्पी के प्रकाश में उसके साथ बैठकर 'वीर अभिमन्यु' नाटक का मसौदा देखता है, संवाद लिखता है और राधेश्यामी तर्ज में गीत बनाता है ! 'मास्टर यह गीत—तुम्हारा हरमुनियम और कमला का गला....इधर युद्ध वेष में जाने को तैयार अभिमन्यु और इधर उत्तरा का यह दर्द भरा गीत !' और तब उसकी आँखों के सामने चित्र उभरता है—वह अभिमन्यु ही तो है और कमला आँखों में आँसू भरे उसे विदाई दे रही है, जाओ प्राणनाथ ! जाओ....क्षत्राणी का यह कर्त्तव्य नहीं कि वह योद्धा को आँसू की ज़ंजीरों में बाँध ले ! और वह चला जाता है, व्यूह भेदने ! सचमुच, कितने व्यूह ! उन्हें वह भेदेगा.... अभिमन्यु की तरह, वीर की तरह....उत्तरा की अश्रु पुलकित आँखों का आशीर्वाद लेकर ! बड़ी हसरत थी मन में, एक बार यह नाटक हो पाता....शायद यही उसके जीवन का पुण्य है—यही वह राह है, जिसके लिए वह भटक रहा था। बाजामास्टर की बातें उसे कभी जागृत न कर पायीं, पर कमला ने उस दिन कहा था—'तुम मेरे साथ स्टेज पर उतरो तो मास्टर की कम्पनी में चली आऊँ !'

सोलह बरस की लड़की, पर कैसी बात करती है, जैसे सब देख-समझ चुकी हो ! कहती थी—'इस कार्नीवल में क्या रखा है शिवराज मैं तार पर नाचने वाली लड़की हूँ। यह पतला-सा तार और हर

पल डगमगाते हुए क़दम....कब-तक साध पाऊँगी अपने को ! आखिर एक दिन....एक दिन यही तमाशा करते-करते नीचे आ गिरूँगी ! सत्तार को गेंद उछालते देखा है, दस-दस, बीस-बीस गेंदें उछालता है एक साथ ! कितना बड़ा जादू है ! है न ? और वे रंगीन गेंदें ! उछलती रहती हैं....मैं तार पर चलती रहती हूँ....'

'ब्याह करके घर बसा लो !' शिवराज ने मज़ाक किया था !

'तुम करोगे ?' जैसे एकाएक हवा का झोंका पाकर घुटती हुई साँस क्षण भर के लिए उन्मुक्त हो जाय । पर सहसा उसकी व्यर्थता का बोध करते ही कमला ने हूँ करके बात को मज़ाक का जामा पहना दिया था । पर वह क्षण भर पहले की चमक उसकी आँखों में तैरती रही थी....बाजामास्टर वह चमक देख कर एकाएक घबरा गया था—आँखों की यह दीप्ति ! अचरज भरी, उत्कंठा भरी, प्यास भरी, पर कितनी उदास ! हसरत की ऐसी चमक....सोलह बरस की अभागी कमला ! शोखी से झिड़क देने के आँखों के ये दिन ! जैसे तिरस्कृत जीवन की खोयी हुई कामना के दिवस माँगते हों ! उफ् यह क्षण भर की चमक उसे मार जायेगी, इसे भूल जा कमला....लीला याद आती है ! वह भी कामना करती थी, ऐसे ही चमकती थीं उसकी आँखें....अपना खोया हुआ कुछ माँगती थीं ! तू न माँग, उस लाचारी की तस्वीर न खींच ! नहीं तो कुछ नहीं कर पाऊँगा मैं ? तू तार पर चल....तू उत्तरा नहीं उतरन है और तेरा अभिमन्यु ....शिवराज ! उस चक्रव्यूह में मारा जायगा....यह क्षणिक वरण ! यह भावावेश....अभिमन्यु का यह नाटक मैं नहीं होने दूंगा ! लीला मुझे क्षमा करना । यह नाटक होते तुम भी नहीं देख पातीं, यह ज्वार न जाने कब उतर जाये; इस ज्वार के बाद कमला के पैर कितने कमज़ोर हो जायेंगे ! तार पर चल सकने की शक्ति भी छिन जायगी उससे, तुम तो गवाह हो लीला —कितनी बार तुमने ऐसे सपने देखे थे ! तुम्हारी आँखों की चमक और इस कमला की दृष्टि ज्योति !

ग्रौर शिवराज ने कैसा भयानक सपना देखा था—'मास्टर ! ऐसा देखा कि क्या बताऊँ ! स्टेज सजा है, भीड़ खचाखच भरी है। वही सीन चल रहा है—ग्रभिमन्यु उत्तरा को वक्ष से चिपकाये समझा रहा है, इस जन्म में नहीं तो ग्रगले जन्म में प्रिये ! यह जन्म-जन्मान्तर का साथ....तभी बिजली चटकती है, घड़घड़ाती है, बादल उमड़ते हैं ग्रौर देखते-देखते तूफ़ान ग्राता है ! भयानक तूफान धरती का कलेजा कँपाता है ग्रौर ग्रासमान फट पड़ता है....चीख-पुकार....तूफ़ान ग्रौर पानी, बादल का समुद्र फट पड़ा हो....सब तहस-नहस हो गया....पर्दे चिथड़े हो गये, बल्लियाँ चरचराकर टूट गयीं ग्रौर स्टेज के तख्त उस सैलाब में बह गये ! —वहाँ कोई नहीं था । पानी का सैलाब ग्रौर डूबे हुए जहाज़ की तरह चमकते हुए स्टेज की बल्लियों के मस्तूल ! न तुम, न कमला ।—कण-कण बिखरा हुग्रा । नष्ट-भ्रष्ट । ग्रौर मैं बुरी तरह चीख पड़ता हूँ मास्टर! ग्राँख खुलती है, मेरे रोंगटे इस वक्त भी भभर ग्राये हैं उसे याद करके !'

बाजामास्टर माथा पकड़ कर बैठ गये, 'हम इस ड्रामे को न ही स्टेज करें तो ग्रच्छा है !'

'नाटक कम्पनी नहीं बनाग्रोगे ? ग्रौर लिखना छोड़ दूं ? कमला क्या कहेगी, मज़ाक करते थे !'

'मज़ाक समझ लेगी तो बुरा नहीं होगा । तुम पर नशा सवार है शिवराज ! इस नाटक के बाद फिर क्या होगा ?'

'दूसरा खेलेंगे !'

बाजामास्टर के ग्रोंठों पर ग्रनुभव की हँसी फैल गयी, हम तो कहीं-न कहीं से मार-तोड़ कर खाते-पीते रहेंगे पर कमला क्या करेगी ? कौन-सा ग्रासरा है जो उसका सहारा बनेगा !'

सहारा ! शिवराज की ग्राँखों में कमला का चेहरा घूम जाता है, यही तो उसने पूछा था उस दिन कमला से । बोली थी, 'बेसहारा को इतना ही सहारा काफ़ी है कि कोई सहारे की बात करे ग्रौर धोखा

दे जाय ! हर तिनके से पतवार की उम्मीद होती है शिवराज ! इतना काफ़ी नहीं है कि नाटक कम्पनी का बहाना मिल जाय और तुम छूट जाने वाले तिनके की तरह उम्मीद का झूठा आसरा बन जाओ...' और उसकी आँखों के समुन्दर में भटकती हुई अनगिन कश्तियाँ, उसने देखी थीं। अपने रूमाल से उसकी आँखें पोंछ कर वह खुद रो पड़ा था और कमला अपनी छाती में उसका मुंह दबाकर बालों को चूमती रही थी—'मैं कहीं नहीं जाऊँगा कमला ! जहाँ तुम रहोगी वहीं साथ रहूँगा, ऐसे ही जीवन भर....'

'मैं उससे शादी कर लूँगा !' शिवराज ने कहा, 'भूखा मरूँगा तो वह भी मरेगी, मैं जिऊँगा तो उसे भी जिलाऊँगा ! यह मैंने सोच लिया है मास्टर !'

'सच !' बाजामास्टर ने पूरी आँखें खोल कर कहा। शिवराज की नज़रों में निश्चय था और बाजामास्टर क्षण भर के लिए चुप रह गया था, फिर बोला था, 'अब लीला सुख से मर पायेगी शिवराज ! आज उसकी आत्मा मुक्त हो गयी ! अब तूफ़ान नहीं आयेगा शिवराज....'

पर तूफ़ान आया....

शिवराज बड़ी लगन से काम में जुट गया था। बाजामास्टर स्टेज की सजावट का सामान इकट्ठा कर रहे थे—बाँस-बल्लियाँ, रोग़न, धनुष, तूणीर, कवच ! इसी बीच वे पर्दों और पोशाकों के लिए इटावा की एक कम्पनी के पास भी हो आये, जो धार्मिक नाटक खेलने में मशहूर थी। पहली बार माँग-जाँच के काम चला लिया जाय, फिर आमदनी से अपनी कम्पनी के पर्दे-पोशाकें बनवा ली जायंगी। नाम रखा गया 'लीला नाटक कम्पनी' जिसका कपड़े वाला साइनबोर्ड बनाने के लिए मास्टर आगरा गये थे। नीले रंग का साइनबोर्ड —लीला को पसन्द था नीला रंग, नील समुद्र, नीलाकाश, नील-पंखी मयूर...जैसे वह कोई मंदिर बनवा रहा हो—ऐसी अगाध श्रद्धा ! पर कमला कैसे आयेगी रिहर्सल में ? रात भर कार्नीवल में,

एक सड़क

दिन भर निकलने, पब्लिक से मिलने की छुट्टी भी नहीं। बड़ा खूँखार आदमी था मैनेजर, मेढक की तरह निकली-निकली आँखें और छिली हुई खूबानी की तरह डोरेदार पीत-लालिमा लिए नशे में डूबी पुतलियाँ! कमला तो सहम जाती है, उन्हें देखकर।

पर शिवराज जैसे तूफ़ान में वहा जा रहा हो। दिन-रात उसी के तम्बू में पड़ा रहता। अभी तक उसे किसी ने टोका नहीं था। वहीं बैठकर नाटक का मसौदा देखने में मन लगता, जैसे कमला के होने का आभास भर सारी बातों को निश्चयात्मक रूप देने में सहायक होता हो। खर्चा जोड़ता, हिसाब लगाता और जब कमला रात स्टेज पर मिले इनाम के रुपये उसके सामने रख देती तो उसका हृदय भर-भर आता—'तन-मन-धन सब दे डालेगी कमला इसके लिए! इन्हें अपने पास रखा कर!' प्यार से वह कहता और कमला सोचती—कल और ज्यादा कमायेगी। शिवराज चाहता मना कर दे। ये ले लेगा तो वह और इनाम पाने के लिए उन मधुर चितवनों को बाँट देगी जो वह अपने लिए सँजोना चाहता है। घूंसा-सा लगता है छाती पर, परन्तु कितनी जल्दी वह इस घेरे से निकाल ले जाय इसे। पर कह कुछ भी नहीं पाता, वह किसलिए कर रही है? मलिनता तो मन में नहीं, चाहती है कुछ वह भी कर सके। बाजामास्टर को दौड़ते-धूपते देखती है तो सहा नहीं जाता उससे—'एक वक्त का खाना छोड़कर कितने पैसे बचा पायेंगे मास्टर जी!' वह उन्हें मास्टर जी ही तो कहती। 'उनसे कहो, तन का खयाल रखें, स्टेज पर हँसी करवानी है क्या? छाती दरक जाती है जब पब्लिक तक आवाज़ पहुँचानी पड़ती है। ऐसे कमज़ोर हो जायेंगे। मैंने उन्हें रोते देखा उस दिन, क्या बात है....?'

शिवराज बात टाल जाता है! उसे एक ही बात सालती है—कमला कैसे बाहर आयेगी इस कार्नीवल से। कमला को भी दिन में मैनेजर कई बार बुलाता है। कुछ...कुछ कहता-सुनता तो नहीं। पर वह हमेशा कोई छोटी-सी बात बता कर उसे शान्त कर देती है।

अपनी मजबूरी छिपाती तो नहीं ! उसका मन कड़वा हो आता है ! यह कार्नीवल...जुए का अड्डा ! जब भी मौक़ा मिलता, लोगों को भड़काता—'शहर के लोगों को जुआरी बनाने का तरीक़ा है ! वैसे भी ज़िले में जरायमपेशा लोगों की कमी नहीं है, इससे और क्या होगा ! लोग आयेंगे, हारेंगे, फिर चोरियाँ करेंगे !....मारपीट-दंगा मचायेंगे....'

रंगीले ने आकर बंसिरी को बताया, मैं तो समझता था शिवराज कार्नीवल वाले जुआरियों के फेर में पड़ गया, वह तो कार्नीवल उखड़वाने के लिए इधर-उधर दौड़ रहा है ! तुम कहती थीं सरनाम उसे बिगाड़ रहा....'

'उसका नाम मत लिया करो मेरे सामने !' बंसिरी बोली तो रंगीले चुप हो गया। पिछले कुछ दिनों से जादू कर लिया है बंसिरी ने उस पर। जब से उसे पता चला है कि खुशी होने वाली है.... काश ! आज अम्मा होतीं, वह सुनती तो न जाने कितने काम-वाम अभी तक शुरू हो जाते।

'क्या सोच रहे हो, नाराज हो गये मेरी बात से !' बंसिरी ने उसे टोका। रंगीले ने मुस्करा दिया, एक और सुनी हुई खबर उसने बंसिरी को दी—'सुना है सरकार सब मोटर-बसों को अपने कब्जे में ले रही है। सरकारी देख-रेख में इन अड्डों से बसें चलेंगी। डिराइवर-क्लीनर सब सरकारी आयेंगे, पता नहीं इन डिराइवरों का क्या होगा?'

'मैं तो कहती हूँ हो जाय, कल होता हो सो आज हो जाय ! कम से कम सिंह जी से तो तुम्हारा पिण्ड छूटे। नौकरी नहीं रहेगी तो झकमार के जायेंगे कहीं....ये गुल-गपाड़ा तो बन्द होगा, यहाँ अड्डे का !....' और उसकी आँखों के सामने एक चित्र उभर आता है—

अड्डा वीरान पड़ा है....दूर तक जाती निर्जन सड़क, जिसे पेड़ों की परछाइयों ने काला रंग रखा है। शाम का धुँधलका छा गया है, ऐसे में यह दूर अन्तरिक्ष तक जाती हुई धुएँ की लकीर-सी सड़क

कितनी उदास लगती है !' एक छाया उस अनन्त सड़क पर अकेली चली जा रही है। पेड़ों की काली परछाइयाँ उसे देर-देर तक अपने में छुपाये रहती है। फिर कहीं खुले में वह छाया दीख जाती है— जैसे अथाह जल में डूबता-उतराता कोई लकड़ी का टुकड़ा ! आसमान चुप है, उसके जाते पैरों की आहट तक नहीं आती, जैसे निस्तब्ध गगन में उड़ता कोई अकेला पंछी....निःस्वन-निरपेक्ष ! सहसा छाया ठिठकती है और जैसे हारकर कोई वस्तु बड़ी पीड़ा से फेंककर आगे बढ़ जाती है। एक स्वर उभरता है, शायद गगन के पंछी का स्वर फूटा था, संगीतमय स्वर....पर यह क्या ? यह तो बैंजो पड़ा है, जिसके तार टूटने के बाद भी थरथरा रहे हैं....यह स्वर किसका था ? उन्हीं टूटे तारों का ? संगीत की यह अन्तिम चीत्कारें बोझिल, उदास—अवसाद भरी....क्या वह सचमुच चला जायेगा ? वह छाया चली गयी ? अब कभी नहीं आयेगी ! और ये घुंघराले बालों की तरह लिपटे हुए टूटे तार....

रंगीले तीसरी खबर देता है—'सरनामसिंह वाली डकैती के चार लोग गिरफ्तार हो गये हैं, बड़ी मार पड़ रही है। कबुलवाने के लिए सुना है, जोड़-जोड़ तोड़ दिया है पर सुराग नहीं देते। बज्जर हैं ससुरे ! यह डकैती चलेगी ज़रूर। बर्र के छत्ते में हाथ डाल दिया ! बड़ा मुकद्दमेबाज आदमी है, जिसके यहाँ मोर्चा लिया था इन लोगों ने !' फिर कुछ डरते हुए कि कहीं बंसिरी भभक न पड़े, उसने बताया था—'सरनामसिंह की पूछ-ताछ के लिए दीवान जी आये थे हमारे पास ! शिवराज को भी कोतवाली जाना पड़ा। अब हम क्या बतायें सरनाम कहाँ है ?' कहकर उसने बंसिरी का मुँह देखा।

बंसिरी चुप थी, एकदम चुप ! न जाने उसकी आँखों में कैसी व्यथा बादलों की तरह घुमड़ रही थी। रंगीले ने बात बदली, चौथी खबर सुनायी—'परसों, एक रोज के लिए बाहर जाना है, फर्रुखाबाद जजी में पेशी है। दोनों तरफ़ का किराया और पचास रुपया नज़-

राना !' रंगीले गवाही देने के लिए तय की गयी रक़म को नज़राना ही कहता था !

'जाना ज़रूरी है ?' बंसिरी ने पूछा, 'काहे का मुकद्दमा है !'

'अबे यह पता नहीं, ये तो वकील साहब बतायेंगे और गवाही रटायेंगे । वैसे शायद मिल्कियत का कोई झगड़ा है !'

'लेकिन तुम्हारी गवाही का क्या असर पड़ेगा, तुम्हारा ज़िला दूसरा है और फिर यहाँ की बात भी नहीं !' उसने यों ही पूछा लिया ।

'जिस गाँव का झगड़ा है, उसमें चौदह-पन्द्रह बरस पहले मैं रहता था, वहीं के एक खान्दान का घरेलू झगड़ा वग़ैरह हुआ होगा ! अब तुम नहीं समझोगी यह सब !'

बंसिरी ने हुँकारी भरी । रंगीले ने आगे सुनाया—'आज और लोग भी पकड़ के आ गये होंगे, मुकद्दमा चालू होते ही वह भी खुद इजलास में पेश हो जायेगा !'

'कौन !' बंसिरी ने पूछा, रंगीले ने बताया—'सरनाम शायद कल परसों तक वापस आ जाय । एकाध दिन छुपा-छुपाया रहेगा, फिर पेश हो जायेगा !' बंसिरी का दिल अदेखी आशंका से धड़क उठा....

तीसरे दिन वह अकेली रह गयी । रंगीले गवाही देने के लिए चला गया । रोज ऐसी ही शाम उतरती थी, ऊँची-ऊँची इमलियाँ आसमानी साड़ी में सुरमई किनारी की तरह टँक जाती थीं, पर आज शिवराज आया था—सरनाम ने भेजा था उसे, रंगीले को बुला लाये, ज़रुरी काम है । बड़ी देर बैठा रहा, वह तो चौंक गयी थी शिवराज को देख कर ! महीने भर पहले देखा हुआ उसका मुख.... और आज का मुख ! जैसे किसी प्रगाढ़ विश्वासमय प्रेम की उद्दीप्त छाया पड़ गयी हो उस पर, पीलाई अनोखे साँवलेपन में बदल गयी थी । भवें घनी हो गयी थीं और आँखों में निश्छल मंथरता समा गयी थी ! वहुत बातें करता रहा—'कार्नीवल को महीने भर का

नोटिस मिल गया है....डेरा-डम्बर उखड़ जायेगा ! गरीब लोगों को चूस डाला कमबख्तों ने !'

'सुना, बड़ी दौड़-धूप की थी तुमने भी....'

'करनी पड़ती है, मुहल्ले वालों का साथ देना ज़रूरी होता है, सरकस और नाच-गाना तो नाम के लिए है। जुए का अड्डा है यह ! वैसे कोई खेले तो पकड़ लिया जाय, पर यहाँ खुले आम खेलने की इजाज़त है, बेरोक-टोक ! यह भी कोई बात हुई भला ? और ये जनता की सेवा का ढोंग करने वाले सब पूँछ दबाये बैठे रहे, बल्कि कांग्रेस के नेता मुसद्दीलाल सिफारिश करने पहुँचे थे कि नोटिस रद्द कर दिया जाय ! पर वह हुआ नहीं !' शिवराज की आँखों में लोनी चमक आ गयी, बोलता गया—'हम एक ड्रामा खेल रहे हैं....'

'फिर वही नचकइयों-गवइयों की सोहबत में पड़ गये ? मैं पड़ी थी, उसे अभी तक भुगत रही हूँ....' बंसिरी बोली, पर सचमुच मन के भीतर कहीं बड़ा गहरा लगाव था। गहरा लगाव था। सोचते हुए बोली—'इस पेशे का आदमी न जाने कैसा हो जाता है, हम जिनका पार्ट खेलते हैं उनका दर्द, उनकी खुशी से हममें कोई अच्छी बात पैदा होने के बजाय बुरी आदतें घर कर जाती हैं। इसीलिए लोगों की नज़रों में गिर जाते हैं। लेकिन एक बात है शिवराज—जब तक स्टेज पर आदमी रहता है, बहुत ऊँचा उठ जाता है, जो लैला का पार्ट करती थी....मन करता था, उसके हाथों को चूम लूँ ! पैरों को माथे से लगालूँ, पर उसके बाद जब वह बाहर आती और जिस तरह उठती-बैठती, जिन फेलों में पड़ती, उन्हें देख कर मन होता—इस पर थूक दूँ....'

'यह तो अपने आप को सुधारने की बात है, इसके लिए जिम्मेदारी नाटक कम्पनियों पर नहीं है !'

'हाँ, यह ठीक है....' बंसिरी ने जैसे भूले-भूले कह दिया—'दुनिया के भीतर एक छोटी-सी दुनिया बनाने की चाह हरेक में होती है....और नाटक सचमुच ऐसी ही एक न्यारी दुनिया है। पर्दों, लट्ठों,

तख्तों की दुनिया—लाली, सफ़ेदी और रंग-बिरंगी पोशाकों की दुनिया। मन को बड़ी शान्ति मिलती है उसमें, सब भूल-बिसर जाता है, बाजों की आवाज़ में....ढोलक, हारमोनियम नगाड़ा, तबला, सारंगी, मजीरा, घुंघरू! अनोखी आवाज़ें हैं सबकी....मन मचलने लगता....हम स्टेज के पीछे मुँह पर लाली-सफ़ेदी लगाती ही होतीं कि स्टेज पर तबले की थाप सुनायी पड़ती....सारंगी की दर्द भरी सदा और झूमते हुए हरमुनिया की आवाज़ और टीस की तरह तपकता हुआ मजीरा....कौन लड़की लैला न हो जाती शिवराज! अपना वश चलता है ऐसे में कहीं....'

सचमुच वश नहीं चलता....जब से शिवराज गया है, वह पचासों बार पर्दा हटाकर अड्डे की तरफ़ झाँक आयी है....पर वह नहीं दिखायी दिया। उस दिन की लड़ाई के बाद वह विराना हो गया....शायद छुपा बैठा हो....पर अपने कल-पुर्जे, अंगड़-खंगड़ देखने ज़रूर आयेगा उस पास वाली कोठरी में। उन्हें जोड़-तोड़ बग़ैर उसे चैन कहाँ! खाली कहाँ बैठता है, कुछ नहीं तो लोहे के भारी-भारी पुर्जों को कूटेगा—रेतेगा और उन्हें इधर-उधर फिट करेगा....मोटर स्टार्ट करके सर के बल इंजन में डूब जायेगा—तब यहाँ से सिर्फ़ उसकी पीठ दीखती है—चट्टान-सी पीठ! टंकी पर मोमबत्ती चिपका कर मशीन से सर मारता है, भूख-प्यास सब बिसर जाती है। बाँहों तक कमीज़ सरकाये—मोबीआयल में बाँहें गे, कालीचीकट अँगुलियों से माथे के मोती ज़मीन पर टपका देता है....उन मोतियों को पी लेती, मछली की भाँति....पवनपुत्र के स्वेद बिन्दु!

पर सरनाम अपनी उन टूटी-फूटी मशीनों के पास भी अभी तक नहीं आया। इमली की जड़ों से अँधेरा फूट-फूट कर ऊपर आसमान की तरफ बढ़ता जा रहा है। देखते-देखते ये छतनार पेड़ काली पहाड़ियों में बदल जायेंगे और आसमान पर कालिख पुत जायेगी, पर वह इधर नहीं आयेगा? अड्डा सुनसान पड़ा है, दिन भर दौड़ने वाली लारियाँ थकी हुई खड़ी हैं, भभूत रमाए। कच्ची पटरी में

पहियों की गहरी-गहरी नालियाँ बन गयी हैं। ऐजेण्टों वाला तख्त खाली पड़ा है। छप्पर की निकली हुई वल्ली में एक फटा टायर लटक रहा है, जैसे अजगर गोल-मटोल हो गया हो—ऊपर चढ़ पाने के लिए ! सरेशाम अड्डा वीरान हो जाता है इन दिनों....कैसा अकेलापन छा जाता है इस कार्नीवल के मारे, आजकल वहीं जमाव लगता है।

बंसिरी भीतर चली आती है, पर यह आवाज़ कैसी ? अड्डे की बंद कोठरी में से स्वर-सा फूटता है—घुटा-घुटा, फिर रुक जाता है। क्षण दो क्षण बाद फिर तिन्....तिन्....तिनन्....तिनन्....जैसे पथरीली ज़मीन पर हौले-हौले पानी बह रहा हो....कि एक धुन फूटती है—सरनाम का बैंजो....गायेगा नहीं ? मन खिंचता है....कैसा अटकाव है इसमें ! मंत्रशक्ति....! आजा तुझसे माफी माग लूँ ! तुझ क्या पता था कि बारूद का खेल खेलने वाली तेरी अँगुलियों में इतना रस भरा है....अभी तो सजी-सँवरी भी नहीं, कैसे आऊँ स्टेज पर....

तभी कोठरी के किवाड़ खुले, सरनाम बाहर निकला और ताला बंद करके अपने घर की ओर चला गया। जाते हुए उसने देखा, ठीक वैसे ही चला जा रहा था जैसे तीन-चार दिन पहले एक एकाकी छाया उस अनन्त सड़क पर अपना संगीत-साथी फेंक कर चली गयी थी....वैसी ही अनुभूति, कोई रोक कर पूछे—कहाँ ? क्यों ? अभी निकट है वह छाया, क्या हुआ है उसे ? नहीं बतायेगा किसी को ! किसी को भी नहीं ? अपनी आँखों को आँचल से सुखा लेती है वह। अब कोई भी नहीं, अड्डा एकदम निर्जन है, सभी स्वर डूब चुके हैं।

पर आजकल बाजामास्टर घटों बैठ कर रियाज़ करते हैं। हाथ उतर गया है, न जाने अँगुलियों की चपलता कहाँ खो गयी, स्वर उभरते हैं पर हाथ शिथिल हो जाते हैं....

कमला से नहीं देखा जाता। शिवराज से कहती है बार-बार —'मास्टर जी को समझाओ।' पर मास्टर पर पागलपन सवार है—लीला नाटक कम्पनी का नाटक ऐसा हो कि पहली वार में पैर जम जायँ! हारमोनियम ऐसा बजे कि लोगों के दिल में और सुनने का मलाल रह जाय। वाजामास्टर जिस मुहल्ले में रहते हैं, उस में बात सुनसुना रही थी। मिलने-जुलने वाले आते रहते हैं, पर हबीब साहब का आना कुछ माने रखता है!

सफ़ेद रेशम-सी दाढ़ी, अधपकी मूँछें और भवें, छोटे-छोटे कटे हुए दूध से सफेद बाल—पतले ओठों में पान की लकीर और शरीफे के गूदे में चमकते बीज की तरह गँदली आँखें। लम्बा-इकहरा शरीर, जो बाँस की तरह ऊपर से कुछ झुक आया है। अलीगढ़ी पैजामा और लम्बा कुरता—बुर्राक पर शुद्ध खद्दर का। चाँदी की चेन में बँधी पुरानी गोल घड़ी और एक मोटा बेंत! यह हैं हबीब साहब—शहर के बुजुर्ग प्रगतिवादी! पर यहाँ भला क्या चलता—प्रगतिवादी और वह भी मुसलमान! करेला और नीम चढ़ा! अछूत से भी बदतर हालत कर दी फिरकापरस्त और मजहबपरस्तों ने। पर जैसे बाँस टूटता नहीं, हबीब साहब का रेशा-रेशा अभी तक लड़ रहा है, पर टूटा नहीं,। गवर्नमेंट स्कूल में इतिहास के मास्टर होकर आये थे, निकाले गये तब से यहीं बस गये हैं। बस, उमर ने मरोड़ दिया है—खपाँचें-खपाँचें चटक कर अलग हो गयी हैं। 'इप्टा' का बड़ा काम किया था हबीब साहब ने ज़िले में, और उनकी मर्दानगी दंगों में सामने आयी थी। हबीब साहब को हिन्दू-मुसलमान कंधों पर उठाये घूमते थे, और 'इप्टा' के सिलसिले में बाजामास्टर उनके नज़दीक आये थे, पर उस वक्त हिन्दुत्व का ज़ोर उन्हें अलग कर ले गया। अब हबीब साहब उनसे मिलते हैं तो उन्हें अपनी ग़लती का अहसास होता है—क्योंकि वह ऐसी जगहों में रह आया है जहाँ मज़हब का फ़रक ज़िन्दगी की कशमकश में सर नहीं उठा पाता, उसकी अहमियत ही नहीं रह जाती, और ज़हर का वह दाँत अपने-आप

टूट जाता है। उन सस्ती वेश्याओं के चौबारों पर हर मज़हब परस्त तन को एक ही नज़रिए से देखता आता है....

हबीब साहब अपनी फटी हुई आवाज़ में उससे बातें कर रहे थे—'मास्टर साहब ! ज़रूर खेलिए नाटक ! ऐक्टरों की कमी पड़ेगी, मैं इन्तज़ाम कर दूंगा। दो गैसें अपने यहाँ हैं, मँगवा लीजियेगा। एक पुराना सैट पड़ा है जंगल के सीन का, उसे बाग़ में भी तबदील किया जा सकता है। बल्लियाँ वग़ैरह इमारती काम के लिए आयी थीं, उन्हें इस्तेमाल में ले आइए !'

फिर हबीब साहब आगे कहते, 'और क्यों न हम लोग मिलजुल कर एक मजबूत क़दम उठावें। अब मज़हबपरस्ती के छिलके उतर चुके हैं और इंसान अपनी असली लड़ाई पहचान चुका है ! हम उसे ताक़त दें, दिमाग़ी तन्दुरुस्ती दें। एक हिन्दी स्टेज क़ायम करें, जिस पर अवाम की रोजमर्रा की ज़िन्दगी की जीती-जागती तस्वीरें पेश करें....हम आदमी में जज़्बात पैदा करें ! उसे दर्द से पसीजना सिखायें, मैं कहता हूँ रोना सिखायें....ताकि वह कल हँस सके, ताज़े फूल की तरह नयी पौध मुस्करा सके !' लम्बे बाँस की तरह हबीब साहब का बदन काँपता है और उनकी ऊँचाई के सामने मास्टर और शिवराज बरसाती घास की तरह लगते हैं....

शिवराज के दिल पर असर हुआ था, मास्टर से बोला था—'सचमुच किसी ऊँचे आदर्श से अपने को जोड़े बिना हम सूख जायेंगे, घास की तरह, या ये जानवर हमें रौंद कर खा जायेंगे। हम यह भी सोचें कि हम यह सब क्यों कर रहे हैं ? किसी लक्ष्य के लिए जियें-मरें !'

'जो चाहे करो भइया !' बाजामास्टर बोले, 'हमारा लक्ष्य लीला है, लीला ! उसकी बात पूरी कर सकूँ....मेरे लिए वही अंत है। मेरी समाप्ति ! हर आदमी हर मंजिल तक नहीं पहुँचता। मेरी मंजिल यही है, आगे का रास्ता तुम्हारा है शिवराज ! मुझे यहीं छोड़ देना पर तुम आगे जाना। मेरा मन इससे आगे जाने को नहीं

होगा, मैं जानता हूँ। तुम लिखो और इन बुराइयों से लड़ो! मैं पैर तले से ज़मीन नहीं खिसकने दूंगा—स्टेज की ज़मीन!'

पर बवंडरों को किसने देखा था....

सरनाम इधर-उधर से पुलिस की कार्रवाई की सुनगुन लेता रहता। उसे अपनी चिंता अधिक नहीं थी, जितनी कि मंगल की। मंगल भी अपनी गिरफ्तारी बचाता हुआ घूम रहा था, आखिर वह भी सरनाम के पास आ लगा। पुलिस सरनाम के घर के चक्कर लगा रही थी। रंगीले से अधिक मातवर आदमी भी कौन था? पर वह बंसिरी! ऐसा बैर मान गयी कि हाथ नहीं रखने देती। मंगल को कहाँ ठहराये? सबसे सुरक्षित उसी का घर है, पुलिस वालों से रंगीले का राह-रसूक भी है, कोई बात भी नहीं उठेगी। शिवराज से उसने रंगीले को बुलवाया और सारी स्थिति समझा दी। बंसिरी इधर शांत थी, और फिर सरनाम के अहसान....मंगल ऐसे खुराफाती से दुश्मनी हो जाने का डर भी....यह तो करना ही पड़ेगा उसे, सरनाम के आड़े वक्त काम न आया तो क्या सोचेगा? जनम भर के लिए दुश्मनी हो जायगी।

बाहर बैठक के दरवाज़े बंद करके तीनों बैठे थे, रंगीले हर क्षण सतर्क था, कहीं-कुछ हो न जाय। बंसिरी पगला न जाय, उसने पूछा तो रंगीले ने बड़ी आसानी से समझा दिया। 'मेरा एक दोस्त है आज रात यहीं रुक के सुबह गाँव चला जायगा!'

'और दूसरा कौन है? बंसिरी के प्रश्न को सुनकर किसी भावी आशंका से वह सिहर उठा! आज अगर इसने सर की टोपी उतारने की कोशिश की तो निबट लेगा। साफ़-साफ़ कह दिया; 'सरनाम है!' पर बंसिरी चुप रही, रंगीले ने राहत की साँस ली।

मंगल भला कब मानता! बोतल सामने रख ली, 'पी लो सिंहजी, कहीं ज़मानत न हुई तो बूँद-बूँद के लिए तरस जायेंगे: यह धीरे बात क्यों नहीं करता, बंसिरी ने जान-भर पाया कि आस-

मान फटा ! सरनाम ने कहा—'एक कानिस्टिवल घर के लगातार चक्कर काट रहा है। मन में आता है टंटा अलग करूं....'

सुबह दीवान जी डकैती वाली तहसील के सर्किल इंस्पेक्टर के साथ आये थे। केस वनाना था। डकैतों के नाम रख दिये गये थे, पर गवाही ? गवाही अजड़ चाहिए भाई ! उसी पर सारा दारो-मदार है। दीवानजी ने कहा था, 'रंगीलाल जी मदद करेंगे दरोगाजी आपकी, ये चाहें तो सब हो सकता है ! और इनकी गवाही ! अकाट होगी। मैंने कहा था कि ऐसा गवाह दिलवाऊँगा कि बिगड़ता केस बन जाय....' और सर्किल इन्सपेक्टर ने घाघ की तरह रंगीले को निहारा था। पीते-पीते रंगीले ने कह ही दिया, 'दीवानजी वार-दात वाली तहसील के दारोगाजी के साथ आये थे, चाहते थे मैं गवाह बन जाऊँ....'

'किस में, हमारे मुकद्दमे में "सरनाम ने पूछा।

'हाँ !' रंगीले ने कहा तो सुनकर सरनाम ने एक ठहाका लगाया, 'खूब रही भाई ! ! मेरा जूता मेरे ही सर !....' और गिलास चढ़ाता हुआ वह उन्मादी की तरह देर तक हँसता रहा।

रात गये सरनाम चला गया, पर मंगल लगातार पीता रहा और अनाप-शनाप बकता रहा। बंसिरी ने सब भाँप लिया था, भीतर ही भीतर वह क्रोध से भुनी जा रही थी। यह दग़ाबाजी और मुझसे !....सरनाम की खातिर इतना बड़ा झूठ ! मंगल ने वैठक में क़ै कर दी, कच्ची शराब की बदबू सारे घर में व्याप्त हो गयी। रंगीले ने नींद में हुकुम चला दिया, 'जरा इसे साफ़ कर जाना !' जल ही तो गयी। पानी की वाल्टी और झाड़ू लिये जब वह पहुँची तो पहली बात बोली, 'इसे निकालो घर से, अभी....इसी वक्त !'

'ऐसी हालत में ! तुम...' रंगीले कुछ कहना चाहता था।

'मैं कहती हूँ वह करते हो या नहीं....या मैं खुद करूँ? निकालो इस शोहदे-बदमाश को घर से !'

'आधी रात को भला....'

बंसिरी चीख पड़ी, 'कहीं जाये, नाली में पड़ा रहे, पर यहाँ नहीं रुक सकता ! एक मिनट भी नहीं....'

मंगल ने ग्राँखें तरेर कर देखा ग्रौर खुद चुपचाप बैठक के बाहर लड़खड़ाता हुग्रा निकल गया । पर हालत उसकी ठीक नहीं थी । रात गश्तवालों ने उसे बेहोशी की हालत में थाने पहुँचा दिया ग्रौर सुबह होते-होते खबर फैल गयी कि एक डकैत ग्रौर पकड़ा गया ।

सरनाम का खून खौल उठा । दो कौड़ी की ग्रौरत की यह मजाल ! मुझसे लड़ेगी ! ग्रौर इस तरह ? रंगीले ने सब सुना, सफ़ाई दी, पर सरनाम के सर पर खून सवार था—'वह ग्रौरत मुझसे दुश्मनी निभा रही है ! उसे सबक़ सिखाने के लिए निशाना तुम बन जाग्रोगे....मेरी भलाइयों का यह नतीजा मिलेगा मुझे ? तुम इतने दब्बू ग्रौर बेकार साबित होगे, यह मैं नहीं जानता था ! मेरी ग्रौरत होती तो देख लेता....उसकी यह हस्ती....'

सब सुनकर भी बंसिरी नीतिज्ञ की तरह चुप रही, पर यह उसने जान लिया था कि ग्रब इस तरह चल नहीं पायेगा—जानवर हो गया है वह ! उसके साथ ग्रादमियत का बर्ताव ! ग्रब नहीं सहेगी, बहुत हो लिया । साँप का ज़हर नहीं मरता । इतना विष है इसके काले दिल में....। बेईमान, दगाबाज़, बेवफ़ा ! एक बार भी बीते हुए दिन याद नहीं ग्राते ? हर जगह मेरी इज्ज़त इसके लिए खिलौना रही है—ग्रौरत ही हूँ मैं ! सराय में बिकी हुई ग्रौरत —'जब तक पूरे रुपये नहीं चुकाता यह, तब तक तुम रखो इसे !' क्या समझा था—घास-पात ! रहम किया था मेरे ऊपर ! तेरे रहम का बदला....सड़-सड़कर मरेगा....कैसा डरावना हो गया है ! शक्ल से मनहूसियत टपकती है !

ग्रौर शाम जब चरही में पानी भर कर रंगीले लौट रहा था तो मंगल के लोगों ने उसे सबक़ दे दिया—ग्रौर करेगा दग़ा ! पीठ में छुरी भोंकने का नतीजा है यह ! गली से गुज़रते हुए किसी ग्रादमी ने बेहोशी की हालत में उसे घर पहुँचाया था । बंसिरी के तो हाथ

पैर फूल गये । क्या करे—कहाँ ले जाय, हाय राम, मार डाला बदमाशों ने ! रंगीले का शरीर जगह-जगह लाठियों की मार से सूज आया था, पूरे शरीर पर नील पड़ गये थे । खून निकल जाता तो इतनी हड़फूटन न होती, वह बेकल पड़ा था । बंसिरी रुई के फाहे बनाये सेंकती रही, पर कुछ भी असर नहीं हुआ । सर की चोट से नकसीर फूट गयी थी....

सरनाम ने सुना तो अवाक् रह गया—यह क्या कर दिया ! शिवराज से हाल मँगवाता रहा । उसे चैन नहीं था, पर यह सब उसे मालूम भी नहीं था, मंगल के साथियों ने बदला लिया था । एक-एक को देख लेगा, पर रंगीले भला क्या सोचेगा ? आखिर किसकी करतूत समझेगा....?

बंसिरी निश्चित मत थी—यह और कौन करेगा उसके सिवा ! बड़ा विश्वास करते थे उस पर । अब यह दुश्मनी चलेगी, यह ख़तरा भी वह उठायेगी । मन में आता है, घायल रंगीले को लेकर शहर छोड़ जाय । पर जाय भी कहाँ....और इस तरह भागना ! अब ज़रूर वह उस मेले वाले किस्से को खोलेगा । मेरी इज्ज़त पर दाग लगाने की कोशिश करेगा ! क्या बिगाड़ा था मैंने इसका ? पर इस तरह जिये ? नामुमकिन था यह ! घृणा की लहर उसके भारी-भरकम शरीर में दौड़ रही थी ! प्रतिहिंसा की अकुलाहट में जैसे रोम-रोम धधक उठा हो, पा जाती तो बोटी-बोटी काट डालती.... कोंच-कोंच कर मारती ! वह अच्छी तरह जान गयी थी कि सरनाम का कोप अब उस पर टूटेगा ।

गवाही के लिए रंगीले को पुलिस वाले चाहते थे । एक दम चौकस गवाही पड़ेगी ! दुनिया जानती है कि सरनाम और रंगीले का साथ है, एक-दूसरे के काम में हिस्सा बँटाते हैं । दीवानजी ने फिर चक्कर लगाया—उनके मन में कहीं सरनाम के लिए आक्रोश छिपा बैठा था । दड़ा चोरी-छुपे चलता है, इसे पुलिस भी जानती है, पर जब से अफ़सरों ने कड़ा रुख अपनाया है तब से नीचे वाले दीवान-अम-

लाश्रों का कमीशन बंद हो गया है। यह सरनाम की ही करतूत है, लेकिन बच के कहाँ जायेगा ? जल में मगर, थल में पुलिस ! दीवानजी से बंसिरी ने खुद बात की, रंगीले खाट पर पड़ा कराह रहा था। फौज़दारी की रिपोर्ट नहीं करायी गयी, साबित तो यही करना था कि डकैतों श्रौर रंगीले की मिलीभगत है, दीवानजी ने श्राँचा-पाँचा समझा कर रपट लिखवाने से उसे रोक लिया। बंसिरी बड़ी देर बात करती रही। दीवान जी के चले जाने के बाद रंगीले ने कहा—'यह ठीक नहीं है ! सरनाम ने मेरे साथ बहुत बुरा किया है, फिर भी मैं उसके खिलाफ़ गवाही नहीं दे सकता ....गुस्से में श्रादमी सब कुछ कर सकता है। तुमने भी तो गुस्से में मंगल को श्राधीरात....?

वंसिरी ने श्राखिरी श्रस्त्रा फेंका—श्राँखों में पानी, सिसकियों में होने वाली सन्तान की सूचना—एक क्षण बाद ही उसकी श्राँखें श्रजीब घृणा से भर श्रायीं। किसी श्रदेखे श्रत्याचार की सूचना उसके चेहरे पर मँडराने लगी, उसने धीरे से कहा—'मैं श्रब तक चुप थी, लेकिन श्रगर तुम सारी बात जान पाते....' मन में घृणा का तूफ़ान श्राया हुश्रा था, उसका वस चल पाता। कैसे भी ! उसे श्रब यह करके रहना है, यह होगा ही, नहीं तो वह चली जायगी कहीं भी, पर इस स्थिति को बर्दाश्त नहीं करेगी ! रंगीले की श्राँखों में विस्मय भर श्राया। वह बोली—'मैं तुम्हारी श्रौरत हूँ न !'

रंगीले ने हुँकारी भरी।

'लेकिन श्रगर....' जैसे उसकी जबान रुकती हो—'श्रगर तुम यह सोचते हो कि मुझे छोड़ दोगे....तब सब ठीक है....' श्राँखों का बाँध टूट गया, श्राँसू थमते ही नहीं—'मैं कहीं भी चली जाऊँगी, इस होने वाले बच्चे को लेकर, पर इस तरह रहना नहीं हो पायेगा....'

'किस तरह !' रंगीले पहेली में उलझा है।

'क्या उसने मेरी शादी तुमसे इसीलिए कराई है कि वह....'

'साफ़-साफ़ कहो....' रंगीले सब कुछ एक साँस में सुन लेना चाहता है।

'कितनी वार उसकी ऐसी कोशिशें रही हैं कि मैं....इसीलिए वह मुझसे दुश्मनी मानता है !'

'किसकी, सरनाम की !' रंगीले की आँखें फटी रह गयीं।

'यह मुझसे नहीं होगा....' आँसुओं और सिसकियों के सैलाव में सब खो गया। रंगीले की आँखों से चिनगारियाँ फूटती हैं--

'देख लूँगा उस हरामजादे को। उठाये आँख। एक मिनट में उसकी हस्ती राख कर दूं !'....आँसू, सिसकियाँ—आग, प्रतिहिंसा ! उबाल, घृणा और कुछ कर डालने की बलवती—दुर्दमनीय शक्ति। अपने टूटे शरीर को लिये वह खाट पर बैठा धधक-धधक कर हाँफता रहा और बंसिरी घुटनों में सिर दिये सिसकती रही....

....बाजामास्टर शिवराज को समझा रहे हैं....'एकदम नयी तरह से ओपिन होगा ड्रामा ! नटराज की आरती....दस लड़कियाँ थाल लेंगी, पाँच एक विंग से, पाँच दूसरे विंग से आयेंगी, संगीत रचना में दक्षिणी प्रभाव रहेगा....लीला की तस्वीर पर फूल चढ़ाकर दसों लड़कियाँ इसी तरह श्रद्धा का भाव-प्रदर्शन करती विंग में चली आयेंगी....कैसा रहेगा !'

लीला की तस्वीर एक फ्रेम में जड़ी अभी से तैयार है, शिवराज ने देखा है, उस पर रोज़ नयी माला पड़ती है। उसे यह कुछ-कुछ पागलपन लगता है ! हबीब साहब रोज आते हैं, बाँस की तरह सर झुकाये और उनकी गँदली आँखों से थोड़ी देर में रोशनी फूटने लगती है। बाजामास्टर की आँखें अनोखे नशे में झूमती रहती हैं। नाटक में पार्ट करने वाले दिलाराम, बंशीधर, रामपरशाद, शौकत, लक्ष्मी, सुशीला की आँखों में उल्लास भरा अचरज है; और कमला ! उसकी आँखों में सन्तोष की परछाइं....स्नेह-डूबी तृप्त आँखें ! स्थिर, एक पथ पर टिकीं....

पर सरनाम की भवों में तनाव है। किसी आने वाले तूफ़ान की प्रतीक्षा करते आकाश-सा निस्तब्ध सूनापन ! कमला पोशाकें

सिल रही है, ठीक कर रही है....अभिमन्यु की पोशाक ! उत्तरा के सुहागचिन्ह में मोती टाँक रही है । बाजामास्टर उसे अपने घर ले आये थे, कार्नीवल उखड़ चुका था । कमला ने साफ़-साफ़ कह दिया था, 'मैं अब नौकरी नहीं करूँगी, भूखी मर जाऊँ पर नहीं....'

भीतर-भीतर पकती इस खिचड़ी की महक सरनाम को लग गयी, एक तो अपना चक्कर, दूसरा यह....क्या करे ? शिवराज से साफ़ कह दे—'यही सब करना है तो अपना रास्ता लो !' पर कह भी नहीं पाता ! और ऊपर से मोटर-बसों के राष्ट्रीयकरण की लटकती हुई तलवार । रोज़ नयी-नयी खबरें सुनायी पड़ती हैं । इस लाइन पर भी सरकारी बसें चलेंगी—नहीं-नहीं, यह झूठी खबर है, इस पर नहीं चलेंगी ! मोटर मालिकों की यूनियन की बैठक रोज़ सुबह से शाम तक होती है, कुछ पता नहीं चलता । सुना है दो-चार दिन में मालिकों की ओर से कुछ लोग लखनऊ जाकर परिवहन मंत्रीजी से मुलाक़ात करने वाले हैं—एक एम० एल० ए० साथ जा रहे हैं । वह कुछ ठीक-ठीक नहीं सोच पाता । कुछ भी साफ़ नहीं दिखायी पड़ता । शिवराज ही सामने पड़ा तो उबल उठा—'यही सब नंगई करनी है तो मुझे मार के करो । चार दिन और सबर करो, रास्ता छोड़कर खुद चला जाऊँगा । काहे को अती रख ली है, मुकदमे भर की देर है, तुम सब लोग जो चाहते हो, हुआ जा रहा है !'

शिवराज चुप रहा । सरनाम की आँखों में उजाड़ सूनापन व्याप्त है, जैसे इस वक्त कोई सहारा चाहता हो । बोला, 'मैं जानता था, मेरे साथ यही होगा, सब आँखें फेर कर बैठ जायेंगे एक दिन.... तो तुमने सब कुछ तै कर लिया है ?'

शिवराज चुप है । सरनाम भभक उठा, 'मैं मर गया था क्या ? मैं कोई भी नहीं था ? तुम्हें अपनी ज़िंदगी बिगाड़नी है तो बिगाड़ लो....एक दिन पछताओगे कि मैं क्या चाहता था और तुम क्या कर बैठे !'

'कुछ बुरा तो नहीं है इसमें !' शिवराज ने कहा ।

'एक बाज़ारू औरत के पीछे इस तरह बरबादी के रास्ते पर लग जाना जवानी की रमक है । आँखें खोल कर देखो, मैं चाहता था तुम कालिज तक जाओ, बी.ए., एम. ए. करो और इज़्ज़त की ज़िन्दगी बसर करो । पर तुम्हारे दिमाग़ पर भूत सवार है, अगर तुम आँखें खोलकर देखने से लाचार हो तो मैं अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता, समझे !'

'मेरी आँखें बन्द नहीं हैं !'

'लेकिन यह सब नहीं होगा !' सरनाम चीखा, 'किसी भी क़ीमत पर नहीं ! मेरा हक़ है तुम पर....बच्चे की तरह पाला है तुम्हें !'

'लेकिन मैं तय कर चुका हूँ....'

'उससे कुछ नहीं होता !' सरनाम चीखता जा रहा है, 'तुम्हारी वजह से आश्रमवालों से बैर मोल लिया, तुम्हारे भाइयों से झगड़ा किया । शहर भर की हिकारत उठाई और अब तुम्हारी आँख देखूँ ! वह भी उस बाजारू लड़की के लिए....' कहते-कहते उसकी सूनी आँखों में बादल घुमड़ आये, गला भर आया—"तुम भी यही करोगे शिवराज ! मैंने अपने लिए कोई नहीं चुना, कोई मेरे लिए सोचता, मेरे लिए जीता-मरता । कितना प्यासा हूँ मैं ! पर तुम्हारे लिए सोच कर मैं अपनी कमी भूल जाता हूँ । मेरा रास्ता ग़लत ही सही, शिवराज ! पर मैं किसी रास्ते पर किसी एक को अपनी तरह चलाना चाहता था, मेरे लिए तुम्हारे मन में भी....' उसकी आँखें डबडबा आयीं ।

शिवराज को उसका प्यार चुम्बक की तरह खींचता है ।

बंसिरी ने जब से शिवराज के इस निर्णय को सुना है, खुश है ! उस सरनाम से पिंड छूटेगा । अकेलेपन की मार से वह बेहाल हो जायेगा, घबरायेगा और सोचेगा । तब कभी उसे बंसिरी की याद आयेगी । दिल में हूक उठेगी । तड़पेगा, पछतायेगा । और तब वह

लस्त पड़े शेर को देखेगी । कितना अनिर्वचनीय आनन्द होगा उस दृश्य में । हारा हुआ आदमी ! औरत वेबस हो सकती है तो आदमी हार सकता है ! पर वह कैसे देख पायेगी—टूटा हुआ खंडित आदमी ! दिल कड़ा करके एक बार देखेगी ज़रूर । अगर आँख भर आयी तो चुरा कर ो लेगी, पर देखेगी ज़रूर । परास्त शक्ति को भी देख सकने की एक अनोखी उत्कंठा होती है । वह उत्कंठा पूर्ति माँगती है ! शिवराज को वह रोज़ समझाती है, उसे ताकत देती है, 'तुम कमला को लेकर यहाँ चले आओ, किसी की फिकर मत करो....'

और शहर में हंगामा मचा है ! हबीब साहब का मुर्दा कब्र से उठकर आया है—मलेच्छ नास्तिक ! वीर अभिमन्यु नाटक के पीछे राजनीति की चालें खोजी जाने लगीं । 'गीतानंद' के कांग्रेसी अखबार की तोप पर पलीते चढ़ गये । रोज़ सुबह एक गोला दग़ता है—

'कम्यूनिस्टों के जहरीले दाँत अभी टूटे नहीं हैं !'

'शहर को वेश्यालय बना देने की नयी साज़िश !'

'सन् बयालीस के ग़द्दार हबीब की हैरतअंगेज़ हरकतें !'

पर बाजामास्टर और हबीब साहब निश्चिंत थे ।

लेकिन शिवराज के सामने दुर्लंघ्य दीवारें निरन्तर उठती जा रही थीं ! सरनामसिंह अभी भी अपनी गिरफ्तारी बचाता हुआ वकीलों से मिल-जुल रहा था....पर उसके सामने था शिवराज ।

'ऐसी लड़की का कोई ठिकाना है जो बाजामास्टर के घर में रहे, अकेली । मैं तुम्हारी सा ी ज़रूरतें पूरी कर दूंगा, और क्या चाहिए तुम्हें ?....'

और उन गलियों में सरनाम रात झुके खुद शिवराज को ज़बरदस्ती लेकर गया । शिवराज चलता जाता, पर उसका मन ऊबता जाता । सरनाम बात छेड़े हुए था—'यही सब करना है तो करो, खुलकर करो मेरी तरह ! झूठे दिखावे में मत फँसो, ये गलियाँ बदनाम हैं; पर इनमें निडर होकर आओ—घूमो, देखो, रुको;

पर अपने को पहचानते रहो ! जानबूझकर धोखे में मत पड़ो...तुम्हें औरत चाहिए ! इसके सिवा और कुछ नहीं, मैं जानता हूँ। इस गली से नफ़रत करना सीखो, ऐसी नफ़रत जो बार-बार तुम्हें खींच लाये। जब तक इन गलियों से नफ़रत करना नहीं सीख पाओगे, तब तक इन्हें जानोगे कैसे ! आज जिसे तुम प्यार कह रहे हो, वह कल मुलम्मे की तरह कतर जायगा, उसके साथ तुम्हारे दिल की चमक खो जायेगी !' सुनकर शिवराज चुप है।

'मुझे देखो शिवराज ! उसी चमक के लिए मैं भटकता रहा, लेकिन फिर वह हाथ नहीं आयी...'

गंदी नालियों, बदबूदार दरबों, झनकते घुँघरुओं और बेगाने लोगों से भरी गलियों में वह सरनाम के साथ घूमता रहा...सरनाम की बातों का कोई विशेष असर उस पर नहीं पड़ा, पर वहाँ के वातावरण ने विरक्ति दे दी। मन उचट गया, अजीब-अजीब-सी बातें उठने लगीं मन में—यह सब क्या देख रहा है ? एक बहता हुआ गंदा नाला और उसमें नहाते, गोते खाते सैकड़ों लोग ! ध्वस्त मानव खण्डहर और उनमें बसेरा लिये हुए अनगिन पक्षी—विकलांग, परास्त, पराधीन...

और उस रात वापस लौट कर सरनाम ने फिर बोतलें खाली कीं, और शिवराज के माथे पर अपना सर टिकाये रोता रहा। उसके रोम-रोम पर अँगुली फेरता रहा। आँखे गड़ाये उसकी कोमल गर्दन को देखता रहा, जिसकी त्वचा में निश्चयात्मक मुद्रा की दो धारियाँ पड़ गयी थीं। उसका मन रोता था—अपने निपट अकेलेपन को सोच-सोचकर ! ऐसे क्षणों में हमेशा शिवराज की ममता, घृणा का पर्त भेदकर ऊपर आती है। सब कुछ सही, पर आदमी की असन्तुष्टि, उसका घबराना वह नहीं देख पाता...

सरनाम ने कहा था—'शायद एक-दो महीने में यहाँ सरकारी बसें आ जायेंगी, मेरा भी कोई ठिकाना नहीं, कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ? मेरी बातों पर ध्यान मत देना, ठीक समझना सो कर लेना...'

शिवराज जैसे परास्त हो गया। रात की उदासी और भी गहरी हो गयी थी। तब उसे लगा कि सरनाम जब इतनी झंझटों में से गुज़र रहा है, तब कुछ मदद देना ज़रूरी था, कम-से-कम पूछता ही रहे। डकैती का मुकदमा अदालत में पहुँचा और सरनाम ने अपने को इजलास के सामने हाजिर कर दिया।

और इकबाली गवाह के रूप में सरनाम के सामने ज़बरदस्त शह की तरह रंगीले खड़ा था! मोहरा चलाने वाले हाथों को उसने देखा—चूड़ियों से भरे, मेंहदी रंगे हाथ...कैसी भी प्रतिहिंसा नहीं जागती। मन उचाट है। जो भी होना हो, हो जाये। सात साल की जेल! छुटकारा तो पायेगा इस सब से। और फिर सोरों के मेले में इन्हीं हाथों ने उसके मस्तक के बाल हटाकर कहा था—'कितना चौड़ा माथा है!" और वही हाथ उसके पथरीले शरीर पर पानी की धार से फिसलते रहे थे! इन हाथों का मोह है बंसिरी...याद अभी वाकी है! यही हाथ रक्षा के लिए उठे होते तो हार जाता आज, चुनौती स्वीकार करूँगा, पर होगा अनर्थ ही! मेरी जीत सुख नहीं दे पायेगी मुझे...

इजलास में भीड़ जमा रहती! शहर के जाने-पहचाने आदमियों पर डकैती का केस है और सरनाम का लँगोटिया यार खिलाफ़ शहादत दे रहा है! माजरा कुछ समझ में नहीं आता। बड़ा गहरा केस है, हाकिम बड़ा काविल है। सेशन कोर्ट में लड़ने की तैयारियाँ अभी से हो रही हैं; जिसके यहाँ डकैती पड़ी, वह भी बड़ा जबर है भाई! इलाहाबाद से बालिस्टर आ रहे हैं, कहता है—'जड़ उखाड़ कर छोड़ूँगा...'

तीन से कम किसी की भी शनाख्तें नहीं। ज़नानी शनाख्तें, पुख्ता सबूत है! चेहरों पर चिप्पियाँ लगवा कर पहचनवाया गया। एक-एक पहचान में आ गया। और भरी इजलास में सरनाम को छः दिखवइयों ने पहचाना। तीन शनाख्त वाले को शर्तिया जेल,

तब भला छै वाला क्या बचेगा ? गनीमत यह हुई कि हाकिम ने ज़मानत मंजूर कर ली।

रंगीले ने अपनी हिफ़ाजत की अर्ज़ी दी थी, सरकारी गवाह था वह। पुलिस को हुकूम मिला था। एक कानिस्टिबल दिन-रात घर के बाहर तखत पर बैठा तमाखू पीता रहता।

पहले रोज जब वह इजलास से लौटा तो सीधा ज़नाने अस्पताल पहुँचा, बंसिरी को सब सुनाया। दो दिन पहले वह सरकारी वकील के साथ मौक़ा देखने गया था। सर्किल इन्सपेक्टर साथ थे। बड़ी ख़ातिर हुई रंगीले की, और दरोगाजी ने नकद तीन सौ रुपये उसे चौधरी से दिलवाये थे—'तुम्हारी ख़ातिर रंगीलाल ने यह ख़तरा उठाया है चौधरी साहब !'

'लेकिन ये कैसे गवाह बन पायेंगे ?' चौधरी को अपना रुपया डूब जाने की फ़िक्र थी।

'रंगीलाल का नाम डकैतों में शामिल किया जायगा, वारंट कटेगा, तब ये पकड़े जायेंगे और कोतवाली में जुर्म का इक़बाल करेंगे, बयान देंगे—तब ये इक़बाली गवाह बनेंगे...' दरोगाजी ने समझाया !

ंगीले ने मौक़ा-जगह देख ली, नक्शा अपनी आँखों में उतार लिया, बयान समझ कर बुद्धि में रख लिया, और सब से ऊपर वे तीन सौ रुपये, बाद मुकद्दमा बाकी तीन सौ—कुल छै सौ का सौदा था !

इधर-नाटक की तैयारियाँ जोर-शोर पर थीं। शहर में विरोध भी बढ़ता जा रहा था। आधी-आधी रात तक रिहर्सल होते, दूसरे दिन ग्राण्ड रिहर्सल की तैयारी थी। युधिष्ठर का पार्ट करने वाले जगमोहन तिवारी ने ऐन दिन अपनी मुश्किल हबीब साहब के सामने रखी—'आज हमारे हेडमास्टर साहब ने बुलाकर कहा कि अगर आपको नाटक ही खेलना है तो स्कूल से इस्तीफ़ा दे दीजिए...'

'यह सरासर ज्यादती है !' हवीव साहब ने अपनी छड़ी रखते हुए कहा—'आपने इसका सबव नहीं पूछा।'

'सवव ? स्कूल कमेटी वाले मौक़ा देख रहे हैं, हम तीन मास्टरों ने पूरी तनख्वाह पाने के लिये बात उठाई है ! और फिर मैं लंका में अकेला विभीषण हूँ न !' जगमोहन तिवारी ने कहा। 'भीतरी बात और है ! हर स्कूल में अपना-अपना चल रहा है। असल में सरकारी स्कूलों को छोड़कर कौन-सा स्कूल है जिले में, जो किसी जाति विशेष के आधिपत्य में न हो ! ब्राह्मणों के अपने स्कूल हैं, कायस्थों के अपने, अहीरों के अलग, अग्रवालों के अलग; हर जगह जाति का सर्प फन फैलाये बैठा है ! इस बार मैं उसका शिकार बन रहा हूँ !"

'क्यों, पूरी तनख्वाह नहीं मिलती ?' हबीब साहब ने पूछा।

'यह किससे छुपा है ! कौन-सा ऐसा प्राइवेट स्कूल है; जिसमें पूरी तनख्वाह मिलती है। चाहे वह मेरा स्कूल हो, चाहे अग्रवाल विद्यालय, चाहे आर्यसमाजी हाई स्कूल ! सौ देते हैं, एक सौ पचास की रसीद लेते हैं ! जरूरतमंदों को सब स्वीकार करना पड़ता है ! करें तो बाल-बच्चे कहाँ से पालें ?' जगमोहन ने कहा तो हबीब साहब तलखी से बोले, 'यह बात है ! इसीलिए आपको निकालने का मौक़ा...'

हबीब साहब ने कहा, 'सोच लो भाई, नुकसान न हो आपका !'

पर तिवारी भला कब मानता। कहता है, निकाल के देखें ! बग़ैर कम्प्लेण्ट निकालें तो भला ! मैं देख लूँगा। कहते हैं; विद्यार्थियों पर आपके इस आचरण का बुरा असर पड़ेगा, स्कूल की बदनामी होती है इसमें। पचहत्तर रुपये देकर एक सौ बीस की रसीद लेते हैं और आचरण का नुस्खा पिलाते हैं ?

हबीब साहब और बाजामास्टर एक-एक अभिनेता की देख-भाल अंडे की तरह कर रहे हैं। एक भी टूटा तो सब चौपट !

स्टेज बनाने का काम हबीब साहब ने उठा लिया। बाजामास्टर को फुर्सत कहाँ ? लाली, पाउडर, कालिख...दुर्योधन की धोती का इन्तजाम, और मुकुट ! जल्दी मोती टाँककर तैयार करो भाई ! अभिमन्यु का तरकस। क्या कहा ? कागज़ नहीं चढ़ा उस पर ! फ़ौरन करो, नहीं तो कब सूखेगा और लड्डन तुम्हारे तीर-कमान तैयार हैं ? ऐसे कैसे चलेगा, ऐन वक़्त पर क्या होगा ? कर लो मेरे भाई...कृष्ण का पीताम्बर अभी तक नहीं आया ? पैसे कहाँ हैं ! कमला की साड़ी फाड़कर पीली रंग लो...काम चलाओ किसी तरह...

कौंधती बिजली की तरह बाजामस्टर अभी यहाँ दिखायी पड़ते हैं, अभी वहाँ—प्राम्पटर के सहारे रहोगे तो सब चौपट हो जायगा ! रटो, पार्ट रटो...प्राम्पटर भूल सँवारने के लिए रहेगा ! गांग...इलाही बैंडवाले के यहाँ से आना है, अभी लाकर रखो !

हबीब साहब सर पर रूमाल रखे अपनी गँदली आँखों से ऊपर बँधती वल्लियों को ताक रहे हैं—पुल्ली यहीं रहेगी, गाँठ लगाओ ओ भाई, खड़े मत रहो, पर्दा चढ़ाओ। एक बार टेस्ट करके देखना है ! उधर नहीं...और थोड़ा इधर। नौ फुट, नापकर...हाँ हाँ... तखत नीचा पड़ता है तो ईंट लगाओ...

ऐक्टर अपना-अपना पार्ट याद कर रहे हैं—कमरे से अजीब-अजीब आवाजें गली में आती हैं...दुर्योधन रिरिया रहा है—'गुरु-देऽऽव !' अभिमन्यु की ओजस्वी आवाज़—मैं चक्रव्यूह भेदूँगा... माता के गर्भ में...बीच-बीच में हँसी; सहयोग भरे वाक्य !

और यह सब अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ। शहर में मुनादी से खबर दी गयी ! मेले-तमाशों के लिए बड़ा उत्साह होता है, काफ़ी भीड़ जमा हुई थी। टिकट दर थी सात पैसा...सब की पहुँच के भीतर। तिवारी अपने हेडमास्टर की आज्ञा का उल्लंघन करके युधिष्ठिर बन रहा था ! बाजामास्टर ने 'ओपनिंग सीन' बड़ी मेहनत से तैयार करवाया था—दस नर्तकियाँ हाथों में आरती

के थाल लिये विंग में खड़ी थीं, पर्दा उठने को था। बाजामास्टर बीच स्टेज पर लीला का चित्र लगा रहे थे, आँखों में आह्लाद के आँसू... शिवराज कमला को उत्तरा के वेष में देखता ही रह गया—इतना रूप! प्राम्पटर हाथों में कापियों लिए अपनी-अपनी जगह खड़े हो गये थे। दूसरे सीन वाले लोग टाट के पर्दे से घेर कर बनाये हुए मेकअप रूम में तैयार हो रहे थे!

हबीब साहब ने विंग में से पूछा, 'रेडी!' बाजामास्टर ने लीला के चित्र पर माला डाली और माथा नवाकर स्टेज से हट आये...

विंग में खड़ी नर्तकियों ने घुँघरुओं की समवेत झनकार की... वातावरण शान्त हुआ और हबीब साहब ने मुस्कराती हुई आँखों से सबको आशीष देते हुए पर्दा उठाया—दोनों विंगों से आरती के थाल लिये घुँघरुओं की झनक के साथ थिरकते हुए पैर स्टेज पर आये...श्वेत-वस्त्रा नर्तकियाँ; जैसे दो दिशाओं से सारसों की पाँत चम-चम करते सितारे लिये उतर पड़ीं हों...दर्शकों ने तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत किया। आरती के थाल लिये श्रद्धामय भाव से नृत्य चल रहा था...

कि आग! आग! की आवाजें नेपथ्य से आयीं....क्षण ो क्षण का असमंजस—तभी स्टेज के पीछे लपटें उठती दिखायी दीं और घबराये हुए अभिनेता इधर से उधर भागने लगे—पानी लाओ....पानी लाओ....मिट्टी डालो....पर धू-धू करती लपटें पर्दों और लकड़ियों को निगलती आ रही थीं....हंगामा मच गया, दर्शकण म भगदड़ मच गयी और पचास-साठ आदमी स्टेज पर पिल पड़े....

बाजामास्टर बदहवास से इधर-उधर दौड़कर पर्दे गिरा रहे थे....हबीब साहब चीख रहे थे—'उधर के कपड़े खींच लो, इधर न बढ़ने पाये आग....' पर भीड़ ने गैस के हंडे तहस-नहस करके उन्हें अँधेरे की चादर में डुबो दिया।....भाग दौड़, आग से लड़ाई और कुछ लोगों की मारपीट....बल्लियाँ उखाड़ लीं गयीं। 'मारो..

मारो सालों को ! एक भी भागने न पाये !' यह अचानक हमला कैसा ? कोई पहचाना भी नहीं जाता—आखिर यह हुआ क्या ? बाजामास्टर लीला की तस्वीर उठाने के लिए स्टेज पर भागे कि सर पर जैसे चट्टान आ गिरी हो, आँखों के नीचे अँधेरा....हबीब साहब के घुटने चलते ही नहीं, यह क्या किया किसी ने ? तिवारी और शिवराज किसी तरह लड़कियों को लेकर टीन में खड़ा कर आये, वे डर से चीख रही थीं....

थोड़ी देर बाद तमाशाइयों की कुछ भीड़ उस बिखरे हुए सामान को देखने के लिए खड़ी रह गयी थी—'यह बदमाशी है किसी की !'

'जानबूझ कर आग लगाई है, और हमला किया गया....'

हबीब साहब घुटने पकड़े एक तरफ़ बैठे हैं। बाजामास्टर बेहोश हैं—सर से थोड़ा खून आया है, एक प्राम्पटर का हाथ बुरी तरह जल गया है। लपटों ने बाजामास्टर को झुलसा दिया है। जले हुए पर्दों की राख पड़ी है, बल्लियों के जले हुए टुकड़े इधर-उधर लोट रहे हैं....दो-चार बल्लियाँ ज़मीन में बुझी हुई मशाल की तरह गड़ी हैं। पोशाकों का कहीं पता नहीं, टीन के सन्दूक अधजले लुढ़क रहे हैं—और लीला की तस्वीर का फ़्रेम भर रह गया है।

बेहोशी से उठकर कराहते हुए बाजामास्टर ने वह फ़्रेम देखा—बीच की तस्वीर मुक्त आत्मा की तरह लुप्त है। शरीर पड़ा है। ठीक वैसे ही जैसे उस दिन लीला का पिंजरा निस्पन्द होकर उसकी गोद में पड़ा था। तब आकृति थी, आज वह भी नहीं, आँखें फाड़े बाजामास्टर देखते हैं—क्षार-क्षार हुई सृष्टि को...ध्वस्त सपने उनकी पुतलियों में फड़फड़ाते हैं, पर-कटे पक्षी की तरह....

एक विकराल हँसी....जैसे श्मशान में कोई हँसा हो ! भयातुर-से लोग बाजामास्टर को देखते रह जाते हैं। लड़कियाँ टीन से इधर आ गयीं, शिवराज उन्हें सँभाल रहा है। हबीब साहब आवाज़ लगाते हैं—'यहाँ से उठाओ मुझे ! लोगों को अस्पताल पहुँचाओ...'

पर बाजामास्टर में अजीब-सी शक्ति आ गयी है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। आँखें फाड़कर कहते हैं—'युद्ध....कुरुक्षेत्र का युद्ध....चक्रव्यूह....हबीब साहब मारे गये....मारे गये!' उनकी चीख़ डरावनी लगती है....

और तब से बाजामास्टर की यह चीखें बस्ती की किसी न किसी गली में वक़्त-बेवक़्त सुनायी पड़ती हैं....कमला उन्हें घर में रोक कर रखती है, कोठरी में ताला बंद करके सताती है। हाँ, सताती है वह। शिवराज़ से हमेशा कहती है, 'इनके लिए कुछ करो, मुझसे देखा नहीं जाता, कोठरी में बंद करके सताना पड़ता है....'

'अकेले डर भी लगता होगा?'

'डर नहीं, दुख होता है, कभी-कभी बड़े घबरा कर रोते हैं मास्टर जी....'

और शिवराज देख रहा है—उसके पैरों तले से ज़मीन खिसक गयी है। लक्ष्य भ्रष्ट तो नहीं हुआ; पर अवरोध तो है। कितनी जिम्मेदारियाँ एकदम ऊपर आ गयीं। हबीब साहब चलने-फिरने से लाचार हैं। बाजामास्टर नीमपागल हो गये हैं, अर्धविक्षिप्त! तिवारी को स्कूल कमेटी से नोटिस मिल गया, अगली पहली को उसकी नौकरी खत्म हो रही है। विभीषण रावण का शिकार हो गया। सरनाम उलझा-उलझा रहता है, बंसिरी अस्पताल में है—जाये भी कहाँ। और कमला तो जैसे बिल्कुल बदल गयी। उसकी हँसी न जाने कहाँ खो गयी! शिवराज से लिखा भी नहीं जाता, कुछ लिख पाता तो शायद यह घुटन कम होती। ज़िन्दगी की इतनी उलझनों में प्यार-स्नेह की बातें भी करने को जी नहीं चाहता, हर वक़्त एक आग धधकती है....

....रंगीले पिछले दिनों मुकद्दमे की चाल से समझ रहा था कि सचमुच जीवन में ज़रूरत सब की पड़ती है! ऐसे पलटे खा रहा था मुकद्दमा कि उसकी समझ के बाहर होता जा रहा था। घर

आता, चुप पड़ा रहता—बंसिरी की हालत नाजुक थी, दिन-रात घंटा-मिनट लगा था। अस्पताल में ही प्रसव का इन्तज़ाम हो सकता था, और क्या होता? सुबह उठकर निकल जाता। चरही में हाँफ-हाँफ कर पानी भरता, भजन भी नहीं गुनगुनाता। खामोशी से चरही भरता और घर लौट आता, जैसे दुनिया से कट गया हो, देखकर बंसिरी परेशान होती, पर उसे एक ही संतोष था—वह सरनाम को सात साल के लिए जेल जाते हुए देख पायेगी....देख भी पायेगी या नहीं, मन कैसा होगा? पछतावा तो नहीं होगा? पछतावा कैसा....

रंगीले इधर कहीं से बिल्ली के बच्चे पकड़ लाया था, उन्हीं से उलझता रहता, बंसिरी पर कभी-कभी गुस्सा भी आता। किस झंझट में डलवा दिया! जनने का समय सर पर और यह मुसीबत पीछे लगी है, दिमाग़ को फ़ुर्सत ही नहीं मिलती।

बंसिरी ने सहारा खोजा, गेंदा कवि को चिट्ठी डाली कि वह कुछ दिनों के लिए यहाँ चला आये। अभी तक कोई जवाब भी नहीं आया। रमते जोगी का कौन ठिकाना....

सरनाम के सर पर दोहरी तलवार लटक रही है! हाकिम के रुख का कुछ पता नहीं चलता, न जाने ऊँट किस करवट बैठे। और इस लाइन के मोटरों के राष्ट्रीयकरण की खबरें ज़ोर पकड़ती जा रही हैं। अपनी बसें चलाकर पिछले दिनों सरकार को बहुत फ़ायदा हुआ है, वह अपना फ़ायदा देखती है, मजदूर का पेट नहीं। आखिर क्या इन्तज़ाम होगा इन ड्राइवरों और क्लीनरों का, जो बेकार होकर बैठ जायेंगे! सरकारी ड्राइवर आयेंगे, तब इन्हें कहाँ काम मिलेगा भला!

मोटर मालिक यूनियन के मालिकान लखनऊ की दौड़-धूप में लगे हैं, धड़ाधड़ प्राइवेट कैरियरों के लैसंस बनवा रहे हैं, दस-दस पाँच-पाँच हज़ार देकर, जैसा सौदा पट जाय। पर इन मजदूरों का पेट कट जायगा! मालिक भी क्या करें? भागते भूत की लँगोटी

पर सन्तोष कर रहे हैं। सरनाम के मोटर मालिक—जैन बाबू लखनऊ जाते हुए थोड़ी देर के लिए रुके थे, बड़ा अफ़सोस था उन्हें, उन्होंने ही खबर दी थी—'अगली पहली से सरकारी बसें चलने का आर्डर हो गया है। क्या करें भाई। बहुत कोशिश की पर कुछ हुआ नहीं....' लैसंस मिलने वाली बात दबा गये। कहते थे—'क्या बतायें, तुम लोगों से प्रेम-मुहब्बत हो गयी थी, पर मजबूरी है। मेरा बस चलता तो अपने एक भी आदमी को बेकार न होने देता, लाचारी है अब तो?'

सरनाम पिछले दिनों से छुट्टी पर था। फ़ैसले की तारीख बढ़ती जा रही थी। शिवराज के रंग-ढंग समझ में नहीं आते! रंगीले से वह मिलना चाहता था, पर वह मुँह चुराये था। सामने ही नहीं पड़ता। बड़ा मन करता, एक बार बात तो कर ले—फ़ैसले के बाद ये सब शक्लें समय की लम्बी दीवार की ओट हो जायेंगी, लम्बे सात साल—कौन जिये, कौन मरे....कौन भटक जाये! मन की बात तो कर लेता....और....और उस बंसिरी को एक बार देख तो लेता, जिसका शाप धारण करके वह चुपचाप चला जाने को तैयार है! मन बेहद डूबता है। हर तरफ़ खण्डहर नज़र आते हैं, हर इमारत ध्वस्त है, बरबादी....टूटन और अकुलाहट। पर मन न जाने कैसा हो गया है। बैर, घृणा, द्वेष से ऊपर उठ गया है। दुश्मन-दोस्त सब बराबर हो गये हैं। जी करता है, हरेक से लिपट-लिपट कर रोये, खूब रोये....आँखों से ओझल होने वाली इन गलियों, सड़कों, दूकानों, बाजारों को अच्छी तरह देखकर अपनी आँखों में अंकित कर ले! वे छूटती हुई राहें-पगडंडियाँ! ये गलियाँ, ये सड़क! चेहरे....दुख-सुख....ज़िन्दगी की गति। घने इमली वृक्षों की छाँह और गुरगुरा कर भागने वाली मोटरें....पेट्रोल और मोबिलआयल की महक, कालिख से पुती श्रमशील अँगुलियाँ....चौराहे, चाय की दूकान! और वह मशीनों की दुनिया, टूटे कल-पुर्ज़ों का संसार....और उसकी एकांतिक वेदना का साथी बैंजो!

सोचकर मन को धक्का लगता है—इस अड्डे का सब कुछ बदल जायेगा ! धूल खड़खड़ाती मोटरें खामोश हो जायेंगी । शाम को जमने वाली ताश पत्तों की महफ़िल वीरान हो जायेगी । ये दिलेर लोग बिखर जायेंगे । एक ज़िन्दगी ही खत्म हो जायेगी ! कैसे देखेगा यह सब ! अच्छा होता, पहले फ़ैसला सुनायी पड़ता और वहीं से अपनी सूनी राह पर चला जाता, यह सब न देखता, इन आँखों से । सचमुच देखा नहीं जायगा ! वह कचहरी से सीधा चला जायगा, इधर आयेगा ही नहीं । सरकारी बसें पहली तारीख से चलेंगी और फ़ैसले की तारीख है तीन ! बोतल....बोतल... होशोहवास गुम कर देने वाली दवा !

और उसने यही तय किया था । वह कल ही बाहर चला जायेगा ! बस तीन तारीख की सुबह स्टेशन पर उतर कर सीधा कचहरी जायेगा और वहीं से सीधा उस अनन्त, सुनसान राह पर ! उन सीकचों के पीछे, जो अपने सिवा और कुछ देखने नहीं देते ।

जाने से पहले रंगीले और बंसिरी को देखने का मन करता था—रात की गाड़ी से उसे जाना था । भीतर ही भीतर कुछ छटपटाता है....उसके पैर उठते जाते हैं और वह रंगीले के मकान वाली गली में हैं । वह कैसे आ गया यहाँ । दूर खड़ा होकर मकान देखता है—टाट के पर्दे से लालटेन की रोशनी छन रही है....एकटक देखता है—कोई छाया गुजरती है उस पर्दे के पीछे—शायद बंसिरी... ज़रा हटाकर झाँक तो लेती एक बार ! नहीं, शायद रंगीले होगा— मेरे दोस्त ! तेरे कंधे पर सर रख कर रो लूँ आज । मैंने कुछ भी बुरा नहीं माना—सच बंसिरी....सच रंगीले ! यही तो मुझे पाना था एक दिन । तुमने क्या किया है ? वह घर के सामने से कई बार गुज़रता है—प्यासी आँखों से ताकता है, हर बार....अब तो रोशनी भी नहीं, क्या करेगा मिल कर....विदा ! मुझे माफ़ करना तुम दोनों....

चलती गाड़ी से सर निकाले हुए सरनाम अपने उस छोटे-से स्टेशन को पीछे छूटते हुए देखता रहा....गाड़ी चलती गयी.... दूर बस्ती की बत्तियाँ टिमटिमाती रहीं....अँधेरी रात में यादों की लौ-से चिराग ! बस्ती बिरानी हो गयी—अब यह मोहक, नशे में डूबी उदास रातें वह कहाँ देख पायेगा ! डबडबायी हुई आँखों के पार सब डूब गया....

बाजामास्टर अपने चेहरे पर खड़िया पोत कर स्टेज पर जाने के लिए तैयार होते हैं, कपड़े बदलते हैं और अभिनेताओं की तरह हाथ फटकार-फटकार कर कहते हैं—'हबीब साहब मारे गये ! हा....हा....हा....' उनकी हँसी सुनकर कमला डर जाती है। फिर वह फुसफुसाकर कहते हैं—'देखा लीला ! तुझे ज़िन्दा कर दिया मैंने....' कहते-कहते नाखूनों से अपना मुँह नोच डालते हैं....खून की धारियाँ त्वचा पर उभर आती हैं, शक्ल और भी डरावनी हो जाती है। कमला उन्हें पकड़ कर कोठरी में बन्द कर देती है और खुद देहरी पर बैठकर घण्टों रोती है, आँखें सुजा लेती है।

शिवराज से नहीं देखा जाता यह सब। एक दिन उसकी सूजी आँखों को देखकर बोला—'कमला, रोओगी तो मैं सब तहस-नहस कर डालूँगा, मेरी तरफ देखो....'

कमला ने देखा, उसकी उदास आँखों में ममता भरी थी। बहुत बोझ से वह बोला था—'अगर तुम्हें दुख होता है तो चलो हम आज शादी कर लें, जो होगा देखा जायगा....'

कमला बोली—'मुझे ग़लत मत समझा करो !' आँखें झुकाए-झुकाए ही वह आगे बोली थी, 'मैं कब कुछ कहती हूँ। कुछ छिपा तो नहीं मुझसे।'

शिवराज का गला रुँध आया था, 'जरा पैर जमा लूँ कमला; वैसे तुम्हें आज बंसिरी दीदी के पास ले चलता; पर वह अस्पताल में जाने वाली हैं।'

'मैं मास्टरजी को ऐसे छोड़कर जाती भी नहीं, इन्हें कौन देखेगा !' कमला ने कहा था ।

बाजामास्टर की हालत का प्रसंग आते ही शिवराज घबरा-सा गया, पर बोला, 'सब ठीक होगा....ठीक होगा कमला !'

कमला उसके कन्धे पर सर रखे बड़ी देर सन्तुष्ट-सी खड़ी रही थी ! अपनी लिखी हुई कविताएँ कमला को दिखा कर वह तिवारी के पास चला गया । स्कूल कमेटी के निर्णय के खिलाफ़ तिवारी की अर्ज़ी ज़िला विद्यालय निरीक्षक के पास पहुँचानी थी—उसे मौका देखकर निकाला गया है । सर्विस बुक उसकी मेहनत और ईमानदारी की गवाह है, पर वह कोई देखता नहीं । उसके स्थान पर एक कायस्थ मास्टर की नियुक्ति भी हो गयी, पर अभी तक कोई सुनवाई नहीं हुई –

बाजामास्टर वैसे ठीक रहते हैं, पर कुछ दिन ठीक रहने के बाद अकस्मात न जाने क्या हो जाता है और वे कभी-कभी कमला की आँख बचाकर बाहर निकल जाते, गलियों में ठहाके लगाते—'लड़ाई....बम्—बम् बम्म !' कभी दार्शनिक हो जाते । तम्वाकू वालों की दुकान पर बैठ कर लोगों को समझाते—'सीधी सड़क है एक ! पर....हर गली में आदमी घूमता है !' जमीन पर थूक कर पहियों की तरह हाथ चलाते हुए छुक-छुक करते वे किसी गली में दौड़ जाते हैं, शोर मचाते हैं, गालियाँ बकते....दो दिन कमला इन्तज़ार करती । फिर कभी अपनी री में वह कमला को पुकारते हुए लौटते हैं और घर आकर पड़ जाते हैं....सोते हैं, हँसते हैं, रोते हैं !

....बस्ती का जीवन बोझिल उदासी से भर गया था । कोई मेला-तमाशा नहीं, ऋतु के त्यौहार नहीं, शादी-व्याह नहीं, राजनीतिक हलचल नहीं । जैसे घूमता हुआ चरख थक कर स्थिर हो गया हो । वही चिर-पहचाने कामकाज—धीरे-धीरे रेंगती जिन्दगी । कुछ ऐसी खामोशी छायी थी शहर पर कि चौराहों पर होने वाले

लड़ाई-झगड़े भी नहीं सुनायी पड़ते थे। सड़क पर कोई गाय-बकरी को भी नहीं हुलकारता। वक़्त से मोटरें आतीं, अड्डे पर खड़ी हो जातीं, भरतीं—चली जातीं। स्टेशन से इक्के कंकड़ की सड़क पर खड़-खड़ करते आते और किसी पेड़ की छाँह में रुक जाते। घोड़ों के मुँह में रातब की बाल्टियाँ लटका कर इक्के वाले बेकारी की नींद सोते या घोड़े की मालिश करते।

और यह सब था मंडी की वजह से—जहाँ सारा कारोबार अगली फ़सल तक के लिए लगभग ठप था। मंडी के फड़ों पर तौला लोग बैठकर रामायण बाँचते और मुनीम पुराना हिसाब मिलाकर रोकड़ वही ठीक करते....एकाध पनचक्कियों की पुक-पुक की तीखी आवाज़ बस्ती की धड़कन की सूचना देती....

ज़िन्दगी ऐसे बह रही थी, जैसे उतार पर आयी नदी। आसमान पर न बादल आते, न धुंध छाती। अबाबीलों के झुंड जो आसमानी ऊँचाइयों पर उड़ा करते थे, न जाने कहाँ खो गये थे! ऊँघता हुआ पिंजर-सा शहर—रीढ़ की हड्डी-सी अकेली सड़क और उसमें पसलियों की तरह जुड़ी हुई सत्तावन गलियाँ! जब सड़क पर हलचल होती तो गलियाँ भी थरथरातीं!

और रंगीले अपने मुकद्दमे का फ़ैसला सुनने के लिए बेचैन था। उदासी ने उसे बाँध रखा था—फ़ैसले का दिन! बंसिरी के दर्द उठ रहे हैं। वह सुबह उसे अस्पताल में छोड़ता हुआ कचहरी चला गया। गेंदा कवि का आसरा देखता रहा, शायद आ जाय, पर नहीं आये, अभी तक। मन में हज़ार शंकाएँ थीं—न जाने क्या हो जाय....

और स्टेशन पर सुबह की गाड़ी से सरनाम उतरा। परदेसी की तरह। शिवराज को देखने का मन था, उसे बुलवा लिया था। शहर की तरफ़ आया भी नहीं। सीधा कचहरी चला गया था।....

कचहरी के अहाते में खासी भीड़ थी । बाबू लोग भी अपना-अपना काम छोड़ कर डकैती का फ़ैसला सुनने के लिए जमा थे। गिरफ़्तार मुजरिमों को जेल से लाया गया था। सरनाम ऐसे घूम रहा था, जैसे किसी को पहचानता तक नहीं । उसकी आँखें रंगीले को खोजती रहीं, पर वह जज के आने पर इजलास में दिखायी पड़ा ! और घोर सन्नाटे के बीच जब डकैती के मुजरिमों की रिहाई का फ़ैसला सुनायी पड़ा तो कमरा गूँज उठा । गूँज-अनुगूँज और पचासों कण्ठों का तुमुल कोलाहल ! मुजरिमों के रिश्तेदारों और साथियों ने कमरा सिर पर उठा लिया—और उस हर्ष और मुक्ति के अह्लाद में किसी ने आगे की बात नहीं सुनी ..

रंगीले का कलेजा धक् से रह गया ! सब उलट गया—झूठी गवाही देने के जुर्म में तीन साल की सख्त क़ैद ! आँखों के नीचे अँधेरा छा गया....यह क्या हुआ मेरे भगवान् ! अब क्या होगा ? सर पकड़ कर वह वहीं बैठा रह गया । बेहोशी-सी आ रही थी.... और पुलिस की हथकड़ियाँ उसके कानों के पास हज़ार-हज़ार घंटों की तरह घनघना रही थीं....

चाह कर भी सरनाम उसके पास सान्त्वना देने नहीं जा पाया । कटे पर नमक छिड़कना हो जायेगा अब तो ! पर मन चीत्कार करता रहा—अभी भी कोई उसे बंद करके ंगीले को छोड़ दे....

शिवराज मिला तो उसने आँखें पोंछते हुए कहा—'भगवान् की यही मर्ज़ी थी । परवस हो गया मैं तो । भइया, जरा उसका खयाल रखना, अस्पताल में देखभाल रखना, तुम्हारे ऊपर ही छोड़े जाता हूँ उसे, जरूरत पड़े तो उसका एकाध जेवर बेच लेना, पर गड़बड़ न होने पाये....' कहते-कहते उसका स्वर डूब गया था ।

शिवराज ने आश्वासन दिया, 'बिलकुल चिन्ता की बात नहीं है । मैं पूरी देख-भाल रखूँगा । दस-पाँच दिन नहीं, हमेशा ! हमेशा ! कमला को उनके साथ कर दूँगा । अस्पताल से जब वह घर आयेंगी, तो मैं वहीं रहने लगूँगा....'

रंगीले की आँखों में याचना भरी कृतज्ञता थी। देखा नहीं गया शिवराज से। सैकड़ों चिन्ताएँ, अभिलाषाएँ उसके मन में घुमड़ रही थीं; बहुत कुछ कहना चाहता था, पर कुछ भी नहीं कह पाया। बोला—'गेंदा कवि को ज़रूर बुला लेना....' फिर मुँह नीचे झुका कर बोला था—'और सरनाम भइया से कहना....मुझे माफ़ करें....'

इसके बाद वह कुछ भी नहीं बोल पाया। दो सिपाहियों की हिरासत में जेल वाली सड़क पर सर झुकाये चलता चला गया था....

सरनाम का मन बेहद उदास था। घूमता-घामता जब घर की तरफ़ आया तो अड्डे पर जाकर बैठने को जी हुआ....बिलकुल भूल ही गया था कि यहाँ नयी सृष्टि होगी—

देखकर बड़ी चोट पहुँची मन को—वे तखत जिन पर ड्राइवर और क्लीनर लस्त होकर पड़ रहते थे, अब नहीं थे। वहाँ सरकारी बसों का टिकट घर खड़ा था। छप्पर वाली कोठरी की जगह टीन का शेड पड़ा था और नीली-नीली बसें शान से खड़ी थीं....वर्दी धारी ड्राइवर और कण्डक्टर इधर-उधर आ-जा रहे थे। सवारियाँ एक तरफ़ क़ायदे से बैठी थीं, जैसे विदेश में यात्री पड़े हों! वह अपनापन, वह मेल-मुहब्बत, जान-पहचान, सब खो गयी थी। परिचित चेहरे न जाने कहाँ छुप गये थे! उजड्ढ किसानों की नजरों में खौफ़-सा समाया था! टूटी बाडीवाली लारियाँ; इमली के नीचे खड़ी होने वाली बीमार मोटरें—सब लापता थीं! वह हंगामा नहीं था....वह ज़िन्दगी नहीं थी....सब कुछ नया था; अच्छा था, पर सब अच्छाइयों के बीच कुछ ऐसा था जो नहीं था—रीता-रीता....उजड़ा-उजड़ा! सिर्फ़ एक पुरानी मशीन पड़ी थी, जहाँ की तहाँ, उसकी चिर-पहचानी; उसी के पास जाकर बैठा रहा, अपनापन था उसमें, उसके लिए भी मन में कहीं कोई जगह थी....

पहले दिन सरनाम ने स्वयं शिवराज को अस्पताल भेजा था—'कोई तकलीफ़ न होने पाये उसे। जिस चीज़ की ज़रूरत हो मुझसे बताना!'

दूसरे दिन वह खुद गया था, पर कैसे देखे उसे? सुख-दुख कैसे पूछे? नर्स से चुपचाप हाल पूछ कर चला आया। सुबह-शाम मन ही नहीं मानता। उसके पैर उसे अस्पताल के फाटक पर लाकर खड़ा कर देते हैं। हर बार हिचक होती है। तरह-तरह के खयालों में डूबा वह फाटक के आस-पास घूमता रह जाता। लौटने को होता है, पर अनजाने-अनचाहे ही भीतर घुसकर नर्स से हाल पूछ कर वापस चला आता है....शिवराज पूरी देख-भाल करता है, जाकर बंसिरी के पास कुछ देर बैठता है; बंसिरी और बच्चे का हाल जानने की उत्सुकता देख कर उसे सरनाम पर आश्चर्य होता है....

गेंदाकवि आ गये थे इस बीच—शिथिल तन, शिथिल मन! गेरुआ वस्त्र, गले में कंठी और हाथ में चिमटा। आँखों में वैराग्य और कण्ठ में कबीर। धीरे-धीरे चिमटे पर गुनगुनाते हैं—'कबिरा गरब न कीजिए कबहुं न हँसिए कोय....आपन नाव समुद्र में ना जाने का होय!' मन को शांति मिलती हैं इससे, माया-मोह का जंगल कटता है....

शहर में सन्नाटा है—जैसे घंटे बजाता हुआ हाथी गुज़र गया हो! सड़क पर आवारा जानवर घूमने लगे हैं। रंगीले के बिना चरही सूखी पड़ी है, प्यासे जानवर भटकते हैं और कमला पागल बाजामास्टर को कोठरी में बंद किये उस दिन की राह देख रही है, जब शिवराज अपने पैरों खड़ा हो पायेगा।

लेकिन जाननेवालों को यही अफ़सोस था कि अस्पताल में बच्चे को लिए पड़ी बंसिरी का क्या होगा? कौन देगा सहारा उसे....

शाम हो गई थी। गेंदाकवि चौराहेवाली मठिया पर अफ़ीम की पिनक में लेटे नीम और इमली की गहरी पड़ती कालिख को देख कर

दार्शनिक की तरह कह रहे थे 'दुनिया में कोई किसी का नहीं ! कोई किसी को सहारा नहीं देता, सब मतलब के यार हैं....'

किसी ने बात जोड़ दी, 'दोस्त दुश्मन हो जाता है महराज ! सरनामसिंह के खिलाफ़ रंगीले गवाही देगा, यह भी किसी ने सोचा था ? उलटी धारा बह रही है ! अब सरनाम बदला लेगा उसके बाल-बच्चों से !'

तभी सड़क से दो छायायें गुज़रती दिखाई पड़ीं। एक आदमी, जिसकी गोद में छोटा सा बच्चा था और पीछे-पीछे आती हुई एक औरत ! गेंदाकवि ने आँखें फाड़ कर देखा और पुकारा—कौन सरनामसिंह !'

'हाँ गेंदा महराज ! क्या बात है ?' सरनाम ने रुक कर जवाब दिया।

'साथ में कौन है, कोई रिश्तेदार आ गया क्या....?'

'बंसिरी है गेंदा महराज !' कहते हुए वह आगे बढ़ गया 'अस्पताल से ले आया हूँ इसे....वहाँ कब तक पड़ी रहती....'

बंसिरी के बच्चे को गोद में लिए आगे-आगे सरनाम चला जा रहा था और उसकी चट्टान सी पीठ को निहारती पीछे-पीछे चली जा रही थी बंसिरी। सड़क पार कर गली में रंगीले के घर का ताला खोलकर बच्चे को देकर सरनाम बोला, 'घर में दिया बत्ती जला ले ! मैं चल रहा हूँ। रंगीले नहीं है तो अकेला मत समझना अपने को ! कुछ जरूरत हो तो मुँह खोल के कह देना....जा....भीतर जा....'

और अपनी गली के लिए मुड़ते हुए सरनाम ने हलकी सी रोने की आवाज़ सुनी थी....पता नहीं बंसिरी क्यों रो पड़ी....यही सोचता हुआ वह अपने सुनसान घर में लौट आया था।

प्रचारक पॉकेट बुक्स

की बीस पुस्तकों की पहली किस्त

[ग्लेज़ कागज तथा पँचरंगे वार्निशदार कवरों से युक्त]

उपन्यास

१. पवित्र पापी		नानकसिंह
२. एक सड़क : सत्तावन गलियाँ	...	कमलेश्वर
३. बिखरे काँटे		लीला अवस्थी
४. वनमाला		'कैफ़'
५. समर्पण	...	तुर्गनेव
६. कादम्बरी	...	बाणभट्ट
७. भाग्यवती		श्रद्धाराम फिल्लौरी
८. लाल पंजा	...	दुर्गा प्रसाद खत्री
९. काले कारनामे	...	'निराला'
१०. मैडेलीन	...	मुद्राराक्षस
११. पङ्कज	...	गुरुदत्त
१२. गवर्नेस	...	हर्षनाथ
१३. नारी एक पहेली	...	मोपासाँ
१४. कस्तूरी	...	शानी
१५. काठ के ताबूत और जिन्दा लाशें	...	प्रकाश दीक्षित
१६. क्लीयोपेट्रा	...	एमिल लुडविग

उर्दू शायरी

१७. इक़बाल की शायरी ... डॉ. हीरालाल चोपड़ा

कहानी-संग्रह

१८. नया स्वर ... मोहनसिंह सेंगर

काम-विज्ञान

१९. काम-मनोविज्ञान तथा यौन-व्याधियाँ... द्वारका प्रसाद, एम. ए.

पाक-शास्त्र

२०. व्यंजन-वीथिका ... कुसुम कटारा

प्रत्येक का मूल्य 1/-

*

(पॉकेट-बुक्स विभाग)

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

मानमन्दिर, वाराणसी–१

वोपड़ा

म. ए.



बिना किसी आडम्बर के सीधे-सादे में जो अभिव्यक्ति कमलेश्वर दे देते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है। नई पीढ़ी के तरुण कथाकारों में उनकी-सी अनुभूति शायद किसी के पास हो, साथ ही उन का कलापक्ष भी प्रौढ़ है।

कमलेश्वर का जन्म ६ जनवरी १९३२ ई० को पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मैनपुरी क़स्बे में हुआ। अब तक उनके दो कहानी-संग्रह, दो नाटक एवं बाल-साहित्य संबंधी एकांकी नाटकों के चार संग्रह-प्रकाशित हो चुके हैं।

"एक सड़क : सत्तावन गलियाँ" कमलेश्वर का उपन्यास है, जो प्रत्येक दृष्टिकोण से सफल है।

1/-

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय